बाल जीवनी माला

पहला हिन्दी संस्करण : मार्च, १९५७
दूसरा संशोधित हिन्दी संस्करण : सितम्बर, १९६१
तृतीय आवृति : मार्च, १९६८
चौथा संशोधित हिन्दी संस्करण
१९७९

बंगला में देवीप्रसाद चटोपाध्याय
द्वारा संपादित

लेखिका
गीता बन्द्योपाध्याय

अनुवादक
त्रिभुवन नाथ

मूल्य : ३ रुपये ५० नये पैसे

जितेन सेन द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली में मुद्रित और उन्हीं के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस(प्रा०) लिमिटेड नई दिल्ली की तरफ से प्रकाशित।

मादाम क्यूरी

मान्या का बचपन

मान्या बेचारी को पता भी नहीं था कि चार साल पहले, यानी उसके जन्म के ठीक बाद, उसकी मां को तपेदिक ने धर दबाया था। यह बात सिर्फ घर के बड़े लोगों को मालूम थी।

मां अक्सर खांसती रहती। खांसते-खांसते कलेजा मुंह को आ जाता। मान्या दौड़ी-दौड़ी मां के पास जाती। मां के गले से लिपटकर अपना प्यार जताना चाहती। लेकिन मां चालाकी से किसी न किसी तरह उसे दूर हटा देती। तपेदिक तो छूत की बीमारी है न! मां को मान्या बहुत प्यारी थी। मां उसी को सबसे ज्यादा चाहती थी। उसे इस तरह दूर करने में मां को कितना दुःख होता होगा। लेकिन मान्या यह सब न जानती थी। मां उसे जानने भी न देती।

मान्या के तीन बहनें थीं और एक भाई। सबसे बड़ी बहन अभी सिर्फ बारह साल की थी। फिर भी, दूसरे भाई-बहनों के मुकाबले अपने को वह पुरखिन

समझती थी। मान्या को लेकर वही घूमने निकलती। वही उसकी चौकसी करती।

उससे छोटा था भाई। नाम था जोजफ। अव्वल दर्जे का शरारती। क्या मजाल कि क्षण भर चुप होकर बैठ जाय। चुप बैठना तो मानो उसके लिए सजा थी। हां, पढ़ने-लिखने में उसका दिमाग बहुत तेज था।

मझली बहन का नाम था ब्रोन्या। यह अभी पढ़ना-लिखना सीख ही रही थी।

तीसरी बहन का नाम था हेला। हेला और मान्या बस इधर-उधर खेलती-कूदती फिरतीं। कभी-कभी मान्या भी पढ़ने की इच्छा प्रकट करती। लेकिन मां और बापू कहते : "बेटी! अभी तुम्हारी पढ़ने की उम्र नहीं है। अभी खाओ-खेलो।"

मान्या के बापू का नाम था व्लादिस्लाव स्क्लोडोव्स्की। एक स्कूल में मास्टर थे वह। मां, मादाम स्क्लोडोव्स्का, वारसा नगर की लड़कियों के प्रसिद्ध स्कूल की प्रधान अध्यापिका रह चुकी थीं।

उन दिनों पोलैण्ड में शासन था रूस के ज़ार का। मतलब यह कि पोलैण्ड पराधीन था। पराधीन पोलैण्ड की स्त्रियां और भी पराधीन थीं। लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने का रिवाज बहुत कम था। मान्या की मां

जैसी कुछ इनी-गिनी उत्साही अध्यापिकायें थीं जिनकी देख-रेख में लड़कियों के दो-चार स्कूल खुल गये थे। लेकिन कालेजों-विश्वविद्यालयों के द्वार उनके लिए अब भी बन्द थे।

मादाम स्क्लोडोव्स्का को बेहद परिश्रम करना पड़ता। हेला, उनकी तीसरी बेटी, गोद में थी। स्कूल से सटे एक मकान में ये लोग रहते थे। स्कूल और मकान पास-पास थे। पति-पत्नी जोड़-तोड़ बैठाकर किसी तरह काम चला लेते।

१८६८ में व्लादिस्लाव स्क्लोडोव्स्की को मिली तरक्की। अब मकान बदलना उनके लिए जरूरी हो गया। मादाम स्क्लोडोव्स्का को स्कूल के निकट कोई घर नहीं मिला। बेचारी को स्कूल भी छोड़ना पड़ा।

१८६७ की ७ नवम्बर को मादाम स्क्लोडोव्स्का की गोद में एक नया शिशु खेलने लगा... नन्हीं-मुन्नी छोटी-सी बच्ची! गोरी-चिट्टी, सुन्दर सलौनी। मादाम स्क्लोडोव्स्का कल्पना भी नहीं कर सकती थीं कि यही भोली-भाली, बालिस्त बराबर बिटिया, एक दिन संसार के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में गिनी जायेगी।

और, कुछ ही दिन बाद उन्हें तपेदिक ने धर दबाया। सुखी परिवार पर पहली बार दुःख की

कालिमा छा गयी। मजबूर होकर स्कूल का काम छोड़ना पड़ा। लेकिन वह खाली हाथ बैठने वाली स्त्री तो थीं नहीं! बच्चों की देख-भाल से जब भी फुर्सत मिलती वह लगे हाथ जूते की सिलाई का काम भी सीखती जातीं। ज्यादा परिश्रम करना मना था। इस-लिए घर पर बैठकर बच्चों के लिए वह मामूली किस्म के जूतों की सिलाई करती रहतीं।

अपने जन्म-काल से ही मान्या कुछ शब्द बराबर सुनती आयी थी। ये शब्द थे: "रूस का ज़ार," "षड़यंत्र," "साइबेरिया," इत्यादि-इत्यादि।

पराधीन पोलैण्ड बार-बार सिर उठाकर खड़े होने का प्रयत्न करता। बार-बार पोलैण्ड विद्रोह करता। १८६३ में तो पोलेण्ड की विद्रोही जनता, निहत्थी जनता, ताल ठोककर ज़ार का मुकाबला करने के लिए उठ खड़ी हुई। लेकिन जनता थी निहत्थी। ज़ार ने विद्रोही नेताओं को फांसी पर लटका दिया। सोचा: अब कभी जनता आजादी के रास्ते पर पांव बढ़ाने का साहस नहीं करेगी। स्कूल-कालेज, आफिस-दफ्तर, सब जगह कड़ा शासन कायम कर दिया गया।

जासूसों के गिरोह-के-गिरोह सिखा-पढ़ाकर तैयार किये जाने लगे। स्कूल के लड़के-लड़कियां रूसी भाषा

छोड़ दूसरी सभी भाषाओं से घृणा करें — इसके लिए विशेष शिक्षा की व्यवस्था कर दी गयी। पोलैण्ड में ऐसे लोगों की कमी न थी जो कमजोर स्वभाव के थे, जिन्हें देश के साथ गद्दारी करते, खुफिया पुलिस के रजिस्टर में अपना नाम लिखाते, शर्म न आती। देश की जनता इनके ऊपर थू-थू करती। स्कूलों में लुके-छिपे पोलिश भाषा में पोलैण्ड का इतिहास पढ़ाया जाता। अध्यापक-अध्यापिकाओं, लेखकों-कलाकारों, पादरी-पुरो-हितों में अधिकांश लोग देश की स्वतंत्रता के पुजारी थे। ऐसे लोगों में ही थे मान्या के मां और बापू।

जिस स्कूल में मान्या के बापू पढ़ाते उसके प्रिंसि-पल, मोशिये इवानोव, थे रूस के जासूस। सो मान्या के बापू और उनमें शुरू से ही झगड़ा होता रहता। मान्या के बापू जब भी प्रिंसिपल इवानोव को जोर-जुल्म करते देखते उनका विरोध करने से न चूकते। इवानोव गुस्से से दांत पीसता; गुर्राता; मौके की ताक में रहता। वह इस स्वाधीनता-प्रेमी देशभक्त को मजा चखाने की घातें सोचा करता।

मान्या थी अभी निरी बच्ची। उसके मन में ये बातें अलग ही अलग, ऊपर-ऊपर, तैरती रहतीं। उन्हें वह एक सूत्र में न पिरो पाती। कभी-कभी उसे

प्रिंसिपल पर बड़ा गुस्सा आता। लेकिन बस। इससे ज्यादा वह कुछ न समझ पाती। मान्या को अपने बापू सबसे अच्छे तब लगते जब वह अपने काम के कमरे में बैठकर चमचम करती कांच की आलमारी से तरह-तरह के साज-सामान, आले-औजार, निकालते और तरह-तरह से उन्हें हिलाते-डुलाते। बापू अपने काम में तन्मय हो जाते।

सो, एक दिन स्कूल का काम-काज खत्म कर बापू घर लौटे और अपने काम में जुट गये। तभी न जाने कहां से चुपके-चुपके उसके पास आ धमकी।

कौन ?

मान्या। वह बापू के कान के पास मुंह ले जाकर बोली : "यह क्या है, बापू ?" बापू ने चौंक कर आंखें उठायीं। क्षण भर उसकी ओर देखते रहे। फिर बोले : "ये सब पदार्थ-विज्ञान के आले औजार हैं, बेटी !"

स्कूल से लौटकर, सरकारी काम-काज से छुट्टी पाकर, बापू पदार्थ-विज्ञान के साज-सामान को लेकर तरह-तरह के प्रयोग करते, तरह-तरह की खोजें करते। बापू के कांच के ये तरह-तरह के खिलौने मान्या को बड़े प्यारे लगते। गाने के सुर में वह गुन-गुनाने लगती :

"प...दा...र्थ...वि...ज्ञा...न ! आ...ले...औ...जा ..र !"

देखते-देखते मान्या बड़ी हुई। उसे भी अपने भाई-बहनों के साथ बापू के कमरे में बैठने और वहां बैठकर पढ़ने-लिखने की इजाजत मिल गयी। दबे गले से गुनगुन करती और पढ़ती हुई बीच-बीच में आंखें उठाकर वह अपने बापू की चमकनी आलमारी को भी देख लेती। वह भी तो एक दिन इन औजारों से प्रयोग करना सीखेगी न !

अब स्कूल के रजिस्टर में मान्या का भी नाम लिख गया : "मारी स्क्लोडोव्स्का।"

दस साल की लड़की थी वह। अपने क्लास में सबसें छोटी, लेकिन पढ़ने-लिखने में सबसे तेज। एक बार जो कुछ सुन लेती; पढ़ लेती, उसे कभी न भूलती। किसी कविता को दो-चार बार अगर उसने पढ़ लिया तो फिर क्या है ! बिना किताब देखे पूरी कविता सर्राटे से सुना देगी। कुछ लोग सोचते कि मान्या जरूर चुपके-चुपके पढ़ती होगी। बड़ी तेज थी उसकी स्मरण-शक्ति।

"मारी स्क्लोडोव्स्का !"

"जी अध्यापिका जी।"

"पोलैण्ड का इतिहास तो पढ़ा है न? बताओ तो स्तानिस्लास आगस्टस कौन था?"

"स्तानिस्लास आगस्टस १७६४ में पोलैण्ड के राजा चुने गये थे। वह बड़े विद्वान और बुद्धिमान राजा थे। उन्होंने अपने राज की कमजोरी और अन्दरूनी गड़बड़ी को समझा, लेकिन वह आवश्यक सुधार नहीं कर पाये। उनमें साहस की कमी थी...।"

पोलैण्ड का इतिहास ये लोग पोलिश भाषा में पढ़ते थे। और यह था बिल्कुल गैर-कानूनी काम। अध्यापिका अन्तोनिना तुपालस्का बड़ी लगन से और बड़े जतन से उन्हें पढ़ातीं। किसी षड़यंत्रकारी के समान ही उनका चेहरा निश्चल और गम्भीर था।

दस-बारह साल के कुछ बच्चे तुपालस्का को घेरे बैठे हैं। अध्यापिका उन्हें पढ़ा रही हैं। कुछ बच्चों की चमकती आंखें उन पर टिकी हैं। न जाने कब के, किस पुराने जमाने के, राजा के गुण-दोषों की चर्चा हो रही है।

क्या-क्या गलतियां की थीं उस राजा ने? क्या-क्या अच्छाइयां थीं उसमें?

टन-टन टन-टन...

यकायक घंटा दो बार टनटना उठा। एक अजीब-

सी झनझनाहट हवा में गूंज उठी — दबी हुई, रुंधी हुई आवाज जैसी।

कमरे में मानो बिजली दौड़ गयी। फौरन चार लड़कियां सारी किताबें बटोरकर न जाने किधर हवा हो गयीं। देखते ही देखते वे फिर लौट आयीं। कब गयीं और कब आयीं कुछ पता ही न चला। सब लड़कियों ने सिलाई के कपड़े हाथ में ले लिये। हरेक के हाथ में कपड़ा। कपड़े पर महीन-महीन बखिया किया जा रहा है। लेकिन सभी लड़कियों की सांस तेज है।

कमरे का दरवाजा खुला। मोंशिये हार्नबर्ग ने अन्दर पैर रखे। यही थे स्कूल के इंस्पेक्टर। चमकदार भड़कीली वर्दी। चमचमाते बटन। अन्दर आकर उन्होंने पहले तो बड़े गौर से सब लड़कियों को देखा, फिर मानो धोखे से एक मेज की दराज खोली और उसमें झांका। नहीं, उसमें भी कोई किताब-कॉपी न थी।

हार्नबर्ग के साथ स्कूल की प्रधान अध्यापिका भी थीं। वह तो जैसे अपने इष्ट देव का सुमिरन कर रही थीं। हाय भगवान! पता नहीं चपरासी ने घंटा ठीक समय पर बजाया है या नहीं?

"जोर-जोर से आप क्या पढ़ा रही थीं?" होंठ चबाते हुए हार्नबर्ग ने पूछा।

"आज से बच्चों को क्रिलोव की परियों की कहानियां सुनानी शुरू की हैं।" शान्त स्वर में तुपालस्का ने उत्तर दिया।

मान्या की छाती धक-धक करने लगी। क्लास की सबसे तेज लड़की वही थी न! सभी सरकारी मुआयनों में सबसे पहले उसी की पुकार होती थी।

"मारी स्क्लोडोव्स्का!"

नाम सुनते ही मान्या के चेहरे का रंग उड़ गया। बेचारी डरती-सहमती सामने आयी।

पहले तो उससे रूसी भाषा में प्रार्थना बुलवायी गयी। फिर प्रश्नों की झड़ी लगा दी गयी। "बताओ तो, पोलैण्ड का स्वामी कौन है?" उत्तर था: "रूस का पवित्र ज़ार।" उत्तर देते-देते मान्या का चेहरा पीला पड़ चला। फिर भी हार्नबर्ग उसे किसी सवाल की लपेट में न ला सके।

हार्नबर्ग साहब बहुत खुश हुए। गजब की याददास्त है इस लड़की की। उच्चारण भी कितना साफ-सुथरा! कौन कहेगा यह लड़की रूस में पैदा नहीं हुई!

आखिर किसी तरह यह दिल-दहलाऊ परीक्षा समाप्त हुई। हार्नबर्ग उठकर दूसरी कक्षा में चला गया।

तुपालस्का का गला भर आया। दोनों हाथ बढ़ाकर धीमी आवाज में उन्होंने पुकारा: "इधर आओ! इधर आओ प्यारी बेटी!"

मान्या पास खिसक आयी। अब तक जो अपमान वह चुपचाप पी रही थी, वही आंसू बनकर आंखों से बरस पड़ा। झर-झर झर-झर आंसू बहने लगे।

घर हो या बाहर, सभी जगह बड़ी कठिन और पेचीदा समस्याएं सामने थीं। अपनी उम्र के लिहाज से मान्या सचमुच बहुत गम्भीर, सचमुच बहुत बड़ी, हो गयी थी।

मां की बीमारी बढ़ती गयी, बढ़ती गयी, बहुत बढ़ गयी। सुन्दर, बड़ी-बड़ी आंखें थीं उनकी, कान तक खिची हुईं। और, अब इन्हीं आंखों में नाच रही थी मृत्यु की छाया।

मां तो बीमार थीं ही, बापू की नौकरी भी चली गयी। प्रिंसिपल इवानोव ने स्क्लोडोव्स्की की नौकरी छीन ली। लेकिन, मान्या के बापू को इससे दबाया तो जा नहीं सकता था। उन्होंने फिर एक छोटे- से स्कूल में नौकरी कर ली। मकान भी बदल लिया। दूसरे घर में रहने लगे। खाने-पीने और पढ़ाई के खर्च पर कुछ विद्यार्थियों को घर पर ही रख लिया।

घर की शांति जैसे नष्ट हो गयी। पढ़ने-लिखने के कमरे में अब पहले जैसा शान्त वातावरण कहां ? लड़के खूब शोर मचाते। सारे घर को गंदा किये रहते। तो भी, आबहवा बदलने के लिए मान्या की मां को समुद्र किनारे जाना ही था। और समुद्र किनारे उन्हें भेजने के लिए बापू को खर्चे का प्रबन्ध करना ही था।

कहावत है : विपत्ति जब आती है तो अकेली नहीं आती। बापू के थे एक कुटुम्बी। इन कुटुम्बी महोदय ने रोजगार में लगाने के नाम पर उनकी सारी कमाई स्वाहा कर दी। लड़कियों के विवाह में दहेज के लिए रुपये की बात तो दूर, लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने के लिए भी पैसा पास न बचा।

और इसके कुछ ही दिनों बाद मान्या की बड़ी बहन जोशिया टाइफस की बीमारी में चल बसी। मान्या समझ भी न पायी कि बड़ी दीदी कहां चली गयी है। एक धुंधला-सा खतरा, एक भारी-सा बोझ उसके मन पर छा गया। मान्या अपनी मां के मुंह को निहारती। लेकिन मां के मुंह को देखकर अपने को और भी असहाय पाती।

दस वर्ष की मान्या जीवन की कटु-कठोर विपदाओं से छुटकारा पाने के लिए जी-जान से पढ़ाई में जुट

गयी। पढ़ती वह गद्य, पद्य और परियों की कहानियां। स्कूल से पढ़कर लौटती तो फिर घर में किताबों की दुनिया में डूब जाती।

आहा ! किताबों की दुनिया ! वहां हार्नबर्ग नहीं ! जोशिया दीदी की मौत नहीं ! वहां दुःख और अभाव नहीं ! मां की बड़ी-बड़ी आंखों से झांकती मृत्यु की काली छाया नहीं !

गुलाम पोलैंड में उन दिनों पढ़ना-लिखना कोई आसान काम नहीं था। जो कुछ सीखना होता, रूसी भाषा में। जर्मन और फ्रान्सीसी भाषा सीखने की पुस्तकें भी रूसी भाषा में थीं। अपनी मातृभाषा में बच्चे साधारण लेख तक नहीं लिख सकते थे।

मान्या सभी को ताज्जुब में डाल देती। उसे देखकर सभी ताज्जुब में आ जाते। बात की बात में वह सब कुछ सीख लेती; जैसे जादू-मंतर जानती हो। रूसी कवितायें तो बात की बात में याद हो जातीं उसे। कभी कोई किताब लेकर बैठती तो उसे और किसी बात की सुध ही न रहती। सिर पर शोर-गुल मचता हो, मचता रहे। धमा-चौकड़ी मचती हो, मचती रहे ! मान्या जब तक पढ़ना खत्म न कर लेती, अपनी जगह से न हिलती।

एक बार एक विचित्र घटना घटी।

मान्या बैठी पढ़ रही थी। बड़े ध्यान से कोई किताब पढ़ रही थी। कुछ और लड़के-लड़कियां भी वहां थे। उन्होंने सोचा : मान्या को चिढ़ाने की कोई तरकीब की जाय।

सो, वे पांच कुर्सियां लाये। चार कुर्सियां उन्होंने मान्या के चारों तरफ रख दीं। फिर, मान्या के सिर के ऊपर, उन्हीं कुर्सियों के सहारे, पांचवीं कुर्सी खड़ी कर दी।

अब क्या था ! लगे सब जोर-जोर से हंसने ! लेकिन मान्या है कि उसे न कुर्सियों के स्तूप का ध्यान, न हंसी का, न शोर-गुल का। वह बस पढ़ने में मगन है।

पढ़ाई खत्म कर ज्यों ही वह उठी, कुर्सियों का स्तूप सिर के धक्के से भहराकर मेज पर गिरा। छिल ही तो गया मान्या का कंधा। क्रोध से फुंकारती, पांव पटकती, वह पास वाले कमरे में चली गयी।

जब भी मान्या पढ़ने बैठती, उसे दीन-दुनिया की खबर न रहती। वह मानो मंत्र के जोर से अपने मन को खींचकर, समेटकर, पढ़ने बैठती।

और एक दिन वही हुआ, जिसका मान्या को डर था। मां मृत्यु शैय्या पर थीं। अपनी दुलारी मान्या को

उन्होंने पास बुलाया। उसे आशीर्वाद दिया। आखिरी सांस छोड़ती हुई वह कह गयीं : तुम सब को मेरा प्यार !

मान्या का मन विद्रोह कर उठा ! कितनी बार उसने भगवान से विनती की थी कि उसकी मां को अच्छा कर दें। लेकिन भगवान थे कि इतनी-सी भी विनती न सुनी। मनुष्य का इतना-सा भला न कर सके ! फिर क्यों वह गिरजाघर जाये ! क्यों पूजा-पाठ करे ! नहीं, अब मान्या गिरजाघर नहीं जायेगी, नहीं जायेगी ! मान्या विद्रोही है !

विश्वविद्यालय

दुःख और दुर्दिन ही सदा जीवन में नहीं रहते। स्क्लोडोव्स्की परिवार के अच्छे दिन भी लौटे। अनेक कठिनाइयों के होते हुए बापू ने चारों भाई-बहनों को पाल-पोस कर बड़ा किया। मान्या की मझली दीदी ब्रोन्या और भाई जोजफ को स्कूल की फाइनल परीक्षा में सोने के पदक मिले।

डाक्टरी पढ़ने के लिए बापू ने जोजफ को यूनिवर्सिटी में भर्ती करा दिया। लेकिन ब्रोन्या? बेचारी ब्रोन्या को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ!

हम पहले ही बता चुके हैं कि उन दिनों लड़कियों को विश्वविद्यालय में पढ़ने की इजाजत नहीं थी। कोई लड़की अगर ऊंची शिक्षा पाना चाहती तो उसके सामने दो ही रास्ते थे: या तो घर पर बैठी-बैठी किताबों से सिर मारे या देश छोड़कर पढ़ने के लिए कहीं और निकल जाय।

विदेश जाना ब्रोन्या के लिए मुमकिन था नहीं। इतना रुपया कहां से आये कि ब्रोन्या विदेश जाये। सो उसने बापू से कहा कि कुछ दिन वह वारसा में रहेगी। वहीं बच्चों को पढ़ायेगी। हाथ में रुपये आ जाने पर पेरिस पढ़ने चली जायगी। पेरिस यूनिवर्सिटी में वह डाक्टरी पढ़ेगी।

मान्या का नाम बापू ने सरकारी स्कूल में लिखाया। सभी कहते: भाई बड़ी तेज लड़की है यह। किसी मामूली स्कूल में डाल देने से इसकी पढ़ाई चौपट हो जायगी।

इसके अलावा एक बात और थी। जब तक सरकारी स्कूल का सर्टीफिकेट न मिले, विदेश जाने की, किसी यूनिवर्सिटी में भर्ती होने की, या कोई नौकरी करने की, गुंजाइश न थी।

नये सरकारी स्कूल में रूसियों का कड़ा शासन था। क्रिलोव की कहानियों के नाम पर पोलिश भाषा में पोलैण्ड का इतिहास पढ़ने की कोई सम्भावना थी? नहीं! मान्या का मन बहुत बेचैन रहता। स्कूल में भर्ती होने के कुछ ही दिन बाद एक जर्मन अध्यापिका से मान्या की झड़प हो गयी। जर्मन अध्यापिका को पोलिश लड़कियों का देश-प्रेम फूटी आंखों न सुहाता

वह बराबर इसी कोशिश में रहती कि किसी तरह इन लड़कियों को नीचा दिखाये।

ढाई हाथ की औरत! मुश्किल से मान्या के कंधे तक सिर पहुंचता। लेकिन बाप रे बाप! कितना गुस्सा भरा था उसमें! सभी डरे-डरे, सहमे-सहमे रहते उसके सामने! नहीं कोई डरता था, नहीं कोई घबराता था, तो मान्या और उसकी सहेली काजिया। दोनों लड़कियां कक्षा में सबसे तेज थीं! ये ही दोनों लड़कियां थीं कक्षा की सबसे साहसी लड़कियां।

मान्या और काजिया में खूब पटती। बस, ऐसा समझो जैसे एक प्राण, दो शरीर। छुट्टी होते ही दोनों निकल पड़तीं। दूर, बहुत दूर, दोनों घूमने निकल जातीं। वारसा नगर का चप्पा-चप्पा छान मारतीं। ढूढ-ढूंढकर नये-नये रास्तों का पता लगातीं। खूब बातें करतीं; तरह-तरह की बातें। तरह-तरह के खेल खेलतीं। खेलने-कूदने, दौड़ने-धूपने और खुली हवा में रहने की आदत मान्या को बचपन से ही थी। खूब स्वस्थ और तन्दुरुस्त हो गयी थी वह।

एक दिन की बात है।

कहीं जा रही थीं दोनों सहेलियां। राह चलते उनकी मुलाकात हो गयी अपनी सहेली कुनिच्का से।

अरे यह क्या! क्या हुआ कुनिच्का को? कुनिच्का की ऐसी हालत क्यों? खूब अच्छे-अच्छे कपड़े पहनती है वह तो। खूब सज-संवर कर रहती है। उसकी पागलों जैसी हालत क्यों? अस्त-व्यस्त कपड़े! दोनों आंखें फूल कर लाल!

"क्या हुआ कुनिच्का? क्या हुआ, बताओ तो, बहन!"

कुनिच्का धम् से बैठ गयी और रोने लगी। सिसकियां भरते-भरते उसने सब कुछ बताया। कुछ समझ में आया, कुछ नहीं। जासूसों ने उसके भैया को एक षड़यंत्र के मामले में फंसा लिया था। फांसी की सजा हो गयी है उन्हें। कल ही तड़के उन्हें फांसी दी जायेगी।

कुनिच्का को बस इतनी ही खबर थी। वह बेचारी फूट-फूटकर रो रही थी।

मान्या और काजिया सन्नाटे में आ गयीं। कुनिच्का को उसके घर ले गयीं। छोटी-छोटी लड़कियां; नन्हा-सा सुकुमार मन! असह्य यंत्रणा से उनका नन्हा मन छटपटा उठा।

कुनिच्का और कुनिच्का की सहेलियों ने रात उसके मकान पर काटी। रात भर सब जागती रहीं।

अब भोर होने को था। भोर का हल्का प्रकाश

सारी दुनिया को धीरे-धीरे सचेत कर रहा था। रात भर जागी, आकाश की ओर टकटकी लगाये बैठी, इन लड़कियों का चेहरा बर्फ जैसा हो गया था। सब सहेलियों ने एक-दूसरे का हाथ पकड़कर घुटने टेके। घुटने टेककर पोलैण्ड के इस बहादुर बेटे के नाम पर अपने कोमल, सुकुमार मन की सारी श्रद्धा इन्होंने उंडेल दी।

इसी तरह रोते-हंसते दिन बीत चले। मान्या ने अब सोलहवें वर्ष में पैर रखा।

सन १८८३। १२ जून को मान्या ने स्कूल की फाइनल परीक्षा पास की। सबसे ज्यादा नम्बर मिले मान्या को। अहा! कितना गर्व हुआ उसके बापू को! स्क्लोडोव्स्की परिवार में तीन-तीन स्वर्ण पदक! काश, मां इस वक्त जीवित होतीं!

परीक्षा के बाद लम्बी छुट्टियां। छुट्टियां बिताकर मान्या फिर वारसा लौटी। छुट्टियां बितायी थीं उसने गांवों में; अपने रिश्तेदारों के घर। वहां उसकी इतनी ख़ातिर हुई, इतना खिलाया-पिलाया गया उसे, इतना.. कि वह और भी मोटी-ताजी हो गयी।

और सिर्फ मोटी-ताजी ही नहीं। हिम्मत भी उसकी चौगुनी हो गयी। मीलों घूमना, घंटों तैरना।

खेलने-कूदने से शरीर तो स्वस्थ हुआ ही, मन भी दृढ़ और मजबूत हुआ। मान्या ने प्रकृति को नयी आंखों से देखना सीखा। नयी-नयी बातों की खोज में रहने वाला उसका मन प्रकृति के रहस्य को छीन लेने के नये-नये सपने देखता।

लेकिन मान्या थी आखिर एक गुलाम देश की बालिका। ऊपर से बापू के पास पैसा नहीं। मान्या अपने जीवन के लिए कौन-सा मार्ग चुनेगी? कौन-सा मार्ग अपने जीवन के लिए निकालेगी?

मान्या और उसकी दीदी ब्रोन्या ने आखिर एक मार्ग खोज निकाला। कौन-सा मार्ग?

यही कि मान्या भी पेरिस जायेगी। स्वाधीन फ्रान्स में वह भी विज्ञान—वही बापू वाला पदार्थ-विज्ञान—पढ़ेगी।

सो ब्रोन्या की तरह मान्या ने भी बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। लेकिन जो पैसा आता खाने-पीने में ही खर्च हो जाता। दोनों बहनें मिलकर भी कुछ जमा न कर पायीं। उधर दिन-पर-दिन बापू की हालत बिगड़ती जा रही थी। लड़कियों के एक स्कूल में पढ़ाते-पढ़ाते बेचारे बिलकुल थक गये थे। लगता था किसी ने उनका सारा सत्व निकाल लिया है। उनकी

अब भला इतनी सामर्थ्य कहां कि लड़कियों को पेरिस भेजें !

मान्या और मान्या के भाई-बहन बापू को बड़ा प्यार करते। यह नहीं कि जैसे मां को प्यार करते थे, वैसे ही। नहीं। बापू के लिए उनका प्यार कुछ और ही ढंग का था। बापू का दिल था बहुत कोमल और दिमाग था एक वैज्ञानिक का। उनका सारा समय गरीबी से जूझने में बीत रहा था। खोज-बीन के लिए, प्रयोग के लिए, बिल्कुल समय न मिलता। तो भी वह बच्चों की ज्ञान की प्यास बुझाने में कुछ उठा न रखते।

शाम को अक्सर सब बच्चे बापू को घेर लेते। बस, एक छोटी-मोटी साहित्यिक गोष्ठी जम जाती। डिकेन्स का नाम सुना है न तुमने ? अंग्रेजी उपन्यास-कार ! उन्हीं का लिखा हुआ एक उपन्यास है—'डेविड कॉपरफील्ड' ! बच्चों के जीवन पर। मान्या के बापू ने इसी उपन्यास का पोलिश भाषा में अनुवाद किया था। उन्हें सदा इस बात का ध्यान रहता कि बिना मां के बच्चों को किसी तरह की तकलीफ न होने पाये।

अब तुम्हीं बताओ, बापू जब बच्चों पर इस तरह जान देते थे तो बच्चे भला बापू के कहने में क्यों न

रहते ? वे उनकी हर बात मानते। कभी उनकी कोई बात न टालते। बापू ने उन्हें अन्याय के खिलाफ लड़ने की शिक्षा दी। इस शिक्षा पर चलने में बच्चों ने कभी कोई कसर नहीं उठा रखी।

बापू बड़ी कड़ी इस्पात के आदमी थे ! फिर भी, कभी-कभी यकायक उनकी हिम्मत टूट जाती। उनके मन पर निराशा छा जाती। गहरी सांस भरकर वह कहते : "ओह ! तुम लोगों के लिए मैं कुछ नहीं कर पाया। शिक्षा भी मैं तुम्हें क्या दे सका ? तुम्हें विदेश भेजने की सामर्थ्य भी मुझ में नहीं। अब मैं बूढ़ा हो चला हूं। डरता हूं, कहीं तुम्हीं लोगों के गले न पड़ूं !"

बापू की बातें सुनकर चारों भाई-बहन बापू को घेर लेते और कहते : "क्या कहते हो बापू ! अब तो हम लोग बड़े हो गये ! डरने की क्या बात है ?"

मान्या के लिए विश्वविद्यालय का द्वार भले ही बन्द हो, ज्ञान का द्वार नहीं बन्द हो सकता था। पोलैण्ड के जाने-माने देश-प्रेमी वैज्ञानिकों की कोशिश-पैरवी से उस जमाने के सारे आईन-कानूनों जो अंगूठा दिखाकर, छिपे-छिपे, एक "प्रदीप्त विश्वविद्यालय" चलने लगा।

गुलाम पोलैण्ड में जैसे देश-प्रेम वर्जित था, वैसे

ही विज्ञान की चर्चा भी। लेकिन विज्ञान की चर्चा लुक-छिपकर होती रहती। रोज शाम को किशोर बालक-बालिकाओं को विज्ञान की शिक्षा दी जाती। उनके मन में देश-प्रेम की लौ जगायी जाती। उन्हें सिखाता जाता : जब भी तुम आम जनता के बीच जाओ, जब भी उसके बीच बैठो-उठो, उसे जगाओ! पुरानी रूढ़ियों को तोड़ो! जनता में नये वैज्ञानिक विश्वास भरो!

पेरिस

मान्या और ब्रोन्या। बड़े उत्साह से दोनों ने विश्वविद्यालय में नाम लिखाया। दोनों ने देश को प्यार करना, विज्ञान को गहराई से जानना, सीखा। विज्ञान और मनुष्य का कल्याण। दोनों चीजें उनके लिए एक ही थीं।

पर रुपये-पैसे वाली समस्या हल न हुई।

बहुत सोचा-विचारा।

एक दिन मान्या ब्रोन्या से बोली : "दीदी! इसी रफ्तार से हम लोग चलीं, तो पेरिस पहुंच चुकीं! एक बात मुझे सूझी है, कहो तो कहू।"

ब्रोन्या बोली : "कहो।"

"हमारे पास जो भी थोड़ी-बहुत पूंजी है," मान्या ने कहा, "उसे लेकर तुम पेरिस चली जाओ। डाक्टरी पढ़ने में चार साल लगते हैं न? इस बीच मैं क्या करूंगी मालूम है? मैं गांव में किसी बड़े घर में ट्यूशन

कर लूंगी। जो कुछ मिलेगा उसमें से थोड़ा तुम्हारे पास भेज दिया करूंगी, थोड़ा अपने लिए बचा रखूंगी।"

ब्रोन्या का हृदय भर आया। आंखों में आंसू छल-छला आये। दोनों हाथ फैला कर बोली : "मान्या! मेरी मान्या! तू निरी पागल है। ऐसा दुःख मैं तुझे कभी न सहने दूंगी। न, कभी ऐसी कुर्बानी न करने दूंगी।"

लेकिन मान्या को दीदी की बात सुनने की सब्र कहां? बेसब्री से दीदी को रोकती हुई बोली : "पूरी बात तो सुन लो दीदी! मैं इस तरह तीन साल चला-ऊंगी। बापू भी तुम्हें कुछ-न-कुछ मदद देते रहेंगे। बस, तीसरे साल मेरे पास पेरिस जाने भर को पैसा हो जायेगा। तब तक तुम्हारे इम्तहान भी खत्म हो जायेंगे। बापू मुझे मदद देंगे ही। तुम भी तो कुछ मदद दोगी न!"

ब्रोन्या तब भी मना करती रही। बोली : "नहीं, यह कैसे हो सकता है? तू तो मेरी छोटी बहन है।"

अब मान्या बिगड़ उठी : "तुम भी बिल्कुल पागल हो दीदी! छोटी हूं तभी तो बाद में जाऊंगी। इसके अलावा और हो ही क्या सकता है!"

सो, ब्रोन्या को पेरिस जाने का इन्तजाम करना ही पड़ा। लड़कियों का विचार जब बापू को मालूम हुआ तो उन्होंने भी उनका उत्साह बढ़ाया।

मान्या जीवन के संघर्ष में कूद पड़ी। उम्र सिर्फ सत्रह साल की। और इसी उम्र में नौकरी की तलाश में इधर-उधर घूमना शुरू कर दिया।

ब्रोन्या पेरिस रवाना हो, इससे पहले मान्या को एक जगह काम मिल गया। एक अपरिचित छोटा-सा गांव। इसी गांव में एक बड़े आदमी के घर लड़कियों को पढ़ाना था। वह वहीं रहेगी। वहीं खायेगी-पियेगी। कपड़े-लत्तों की धुलाई का खर्चा भी वे ही लोग देंगे। ऊपर से, साल में चार सौ रूबल की तनखाह।

मान्या फूली न समायी। अपनी छोटी-सी हिसाब की कापी उसने निकाली। जमा-खर्च का पूरा हिसाब लगाया : कितना वह दीदी को देगी और कितना अपने लिए रखेगी!

लो, उसके गांव जाने का वक्त आ गया। बड़ी उथल-पुथल है उसके मन में। बापू, भैया, दीदी को छोड़कर, जाने-पहचाने घर को छोड़कर, घर के लोगों से दूर—कहां जा रही है मान्या? कहां जा रही है घर की सबसे छोटी बिटिया?

गांव में जमीदार साहब का घर वैसा ही निकला जैसा उसे डर था। चौबीसों घंटे मालकिन का पारा गरम। और रहन-सहन? रहन-सहन को देखकर तो मान्या को पूरे अभिजात वर्ग से घृणा हो गयी। उन दिनों पोलैण्ड के बड़े आदमी अपने बच्चों को फ्रांसीसी और रूसी छोड़ और कुछ नहीं सिखाते थे। पोलिश भाषा में तो बातचीत भी नहीं करते थे। अपने को जन-साधारण से अलग, ऊंचा, ऊपर उठा हुआ, दिखाना चाहते थे। उन्हें डर था कि कहीं विदेशी शासक उन्हें मामूली आदमी न समझ बैठें।

मान्या ने अपनी सहेली काजिया को लिखा: "ये लोग बड़े आदमी हैं। बड़े आदमी ऐसे कि पांच-पांच नौकर रख लेते हैं, लेकिन तनखाह नहीं देते उन्हें। एक महीने उधार लो, तो भरने में लग जाते हैं छै महीने। एक तरफ तो रेल के खर्चे में कतर-ब्योंत, दूसरी तरफ औरों को दिखाने के लिए अंधाधुंध पैसे की बरबादी। फ्रेंच के नाम पर ये लोग बोलते हैं एक अजीब-सी दोगली जबान। उच्चारण सुनो तो हंसते हंसते पेट में बल पड़ जायें। लेकिन तब भी बोली जायेगी फ्रेंच ही।

"बातें ये लोग बड़ी मीठी-मीठी करते हैं। आवाज में जैसे शक्कर घुली हो। लेकिन दूसरों की

बुराई छोड़ और कोई बात इनके मुंह से नहीं निकलती। यहां आकर आदमी को मैंने और अच्छी तरह पह-चानना सीखा। यकीन मानो, उपन्यासों में जो चरित्र हम पढ़ते हैं न, वे सब असली हैं। पैसा आदमी को कितना नीचे गिरा सकता है, यह यहीं आकर मैंने देखा।"

खीझकर मान्या को काम छोड़ना पड़ा। तो भी, उसे ज्यादा दिन बेकार नहीं बैठना पड़ा। एक और परिवार में, अच्छी तनखाह पर, काम मिल गया। बड़े अच्छे आदमी थे ये लोग। खूब अच्छा घर। दो लड़कियों को पढ़ाती थी मान्या। एक दस साल की —बड़ी लाड़ली, बड़ी दुलारी। दूसरी उसकी बहन, मान्या की उम्र की। उन्हें पढ़ाते सात-सात, आठ-आठ घंटे बीत जाते। समय मिलने पर मान्या वहीं की स्थानीय लाइब्रेरी से पुस्तकें लाती। विज्ञान की पुस्तकें लाती। पुस्तकें पढ़ती-पढ़ती वह उनमें डूब जाती। कभी-कभी उसका मन दुखी होता तो कापी खोलकर बैठ जाती और 'कैलकुलस' के ऊबड़-खाबड़ सवाल हल करने लगती। क्या खूब नुस्खा निकाला था उसने मन को बहलाने का!

लेकिन मान्या को इतने से सन्तोष न था। मन

ही उसका ऐसा बन गया था कि चैन से न बैठ पाती। जब देखो तब काम। हमेशा काम करने को बेचैन। एक दिन उसकी बड़ी शिष्या से उसका सलाह-मशविरा बहुत देर तक चलता रहा। थी भी तो वह उसी की उम्र की। मान्या अपने पुराने "विश्वविद्यालय" का आदर्श नहीं भूली थी। दोनों ने फैसला किया कि वहां के मिल-मजदूरों के बच्चों को इकट्ठा करके एक क्लास चलायेंगी। घर की मालकिन अच्छे स्वभाव की थी। उसने इजाजत दे दी। फिर क्या था! ठीक हो गयी जगह। मान्या के कमरे के पास ही।

मान्या और उसकी शिष्या—ये थीं नये स्कूल की अध्यापिकाएं।

शाम को घर पर भीड़ लग जाती; फटे-पुराने कपड़ों में लिपटे लड़के-लड़कियों की भीड़। सब इकट्ठा हो जाते। फिर, अटक-अटककर, धीरे-धीरे, एक-एक शब्द ये लोग पढ़ते। मान्या बड़े धीरज से पढ़ाती उन्हें। बड़ा अपनत्व मालूम होता उसे उनके साथ। शाम को जैसे ही उनके नंगे पांवों की चाप उसे सुनाई देती, उसे लगता कि उसका कोई सगा-सम्बंधी आ रहा है।

१८८८ में मान्या के बापू ने पुरानी नौकरी से छुट्टी ली। अब एक नयी नौकरी कर ली उन्होंने।

यह नौकरी बहुत अच्छी तो नहीं थी, लेकिन तनखाह अच्छी थी। ब्रोन्या की पढ़ाई का सारा खर्च बापू ने अपने सिर ले लिया। ब्रोन्या ने मान्या से पैसे लेना बन्द कर दिया। बापू को लिख दिया: हमारे हिस्से का कुछ पैसा काटकर मान्या के हिस्से में जमा करते जाओ।

ब्रोन्या ने कई परीक्षाएं पास कीं—एक के बाद एक। खूब अच्छे नम्बरों से। लेकिन...

लेकिन क्या?

यही कि मान्या के मन में विदेश जाने की अब पहले जैसी हूक न थी। तीन वर्षों का लगातार संघर्ष। इस संघर्ष के बाद बहुत-सी बातों का मूल्य मान्या ने नये सिरे से आंका। बापू बूढ़े हो चले हैं। मान्या को अब वह अपने पास रखना चाहते हैं। भाई और बहनों की समस्या भी है। सारा बोझ अब उसे अपने कंधों पर लेना होगा।

जोजफ भैया ने डाक्टरी पास कर ली थी। लेकिन हाय री पैसे की तंगी! वारसा में अपना दवाखाना भी न खोल सके। उन जैसे होशियार डाक्टर को गांव भेजने का मतलब था उनकी मट्टी-पलीत करना।

तीसरी बहन हेला के लिए भी मान्या को कम

चिंता न थी। वह बड़ी सुन्दर थी। सुन्दर होते हुए भी उसकी सगाई टूट चुकी थी। सगाई टूटी थी इसलिए कि बापू मुंहमांगा दहेज न दे सके।

अन्त में मान्या के भाग जागे। ब्रोन्या की चिट्ठी आई।

जल्दी-जल्दी लिखी कुछ सतरें थीं :

"फौरन चली आ। मैं शादी कर रही हूं। हमारे यहां तू बेखटके रह सकेगी। किराये के रुपयों का किसी तरह इन्तजाम कर ले और गाड़ी पर बैठकर पेरिस भाग आ।"

ब्रोन्या के ब्याह की बात घर वालों को पहले से मालूम थी। एक जाने-माने क्रान्तिकारी थे ब्रोन्या के होने वाले पति। पेरिस में डाक्टरी पास करने की तैयारी में आज-कल लगे हुए थे। देश-भक्ति के जुर्म में सरकार ने उन्हें साइबेरिया भेज दिया था। साइबेरिया समझते हो न? कालापानी। लेकिन वहां से भागकर वह फिर पेरिस आ पहुंचे थे।

बड़ी उधेड़-बुन में है मान्या। क्या करे, क्या न करे।

आखिर मान्या एक दिन पेरिस जाने वाली गाड़ी पर जा बैठी। मन ही मन वह कह रही थी : "एक-एक कौड़ी समझ-बूझ कर खर्च करनी होगी, मान्या!"

रेल के तीसरे दर्जे में मान्या अपने टूटे बक्से पर बैठी है। यहां बैठी वह ऐसा महसूस कर रही है जैसे गद्दीदार कुर्सी पर बैठी हो। साथ में लोटा-थाली वगैरा भी हैं, छोटी-मोटी गृहस्थी का सरंजाम।

बापू भी उसे स्टेशन तक छोड़ने आये थे। भर्राये गले से मान्या ने कहा : "घबराना नहीं, बापू! मैंने इम्तहान खत्म किये नहीं कि फौरन चली आऊंगी।"

बूढ़े बापू का गला भर आया। मान्या को छाती से लगाकर रुंधी आवाज में बोले : "रानी बिटिया! जल्दी घर लौट आना। इम्तहान का नतीजा अच्छा होना चाहिए। समझी बेटी! बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी, हां!"

छिक्...छिक्...छुक्...छुक्...!

गाड़ी पेरिस की ओर जा रही है। सारबान विश्वविद्यालय! नया जीवन! दूर तक फैला हुआ भविष्य...!

एकाग्र तपस्या

"सारबान के विज्ञान विभाग में नवम्बर १९०१ से पढ़ाई शुरू होगी !"

विश्वविद्यालय की दीवारों पर चिपके इस नोटिस को मान्या एकटक देखती रह जाती। उसका मन न भरता।

सारबान विश्वविद्यालय ! पेरिस ! मान्या का सपना साकार हुआ। विश्वविद्यालय के रजिस्टर में फ्रांसीसी ढंग पर उसका नाम लिखा गया : "मारी स्क्लोडोव्स्का।"

सारबान विश्वविद्यालय था ब्रोन्या के घर से बहुत दूर। ब्रोन्या का घर मजदूरों के एक मोहल्ले में था। मारी के बहनोई काशिमिर वहीं डाक्टरी करते थे। ब्रोन्या भी गांव की औरतों की दवा-दारू करती।

मान्या को पाकर भला कौन खुश न होता ? ब्रोन्या और काशिमिर की खुशी का ठिकाना न था। और यही बात मारी के लिए भारी मुसीबत की चीज बन गयी।

कैसी मुसीबत ?

काशिमिर मारी को प्रसन्न रखने में कुछ भी न उठा रखना चाहते। नतीजा यह कि मारी की पढ़ाई डांवा-डोल हो गयी। ब्रोन्या के घर शाम को बैठकें जमतीं, अपने देश से निर्वासित पोलिश स्त्री-पुरुषों की बैठकें जमतीं। इन बैठकों में मारी की बराबर पुकार होती रहती।

एक बात और थी। दोनों बहनों में बहुत दिन बाद मुलाकात हुई थी न ! सो ब्रोन्या मान्या से बातें करती न अघाती। जब देखो तब बातें। बातें खत्म ही न होतीं। मौका पाते ही ब्रोन्या कोई न कोई बात छेड़ देती। अब बातें हो रही हैं, तो उनका कोई अन्त ही नहीं।

मारी पहले से ही बहुत पिछड़ी हुई थी। पोलैण्ड में वैज्ञानिक प्रयोग के साधन भला कहां से मिलते ? फिर घर से रोज इतनी दूर आना-जाना। पैसा भी खर्च होता, वक्त भी। मारी ने सोचा। सोच-विचार कर फैसला किया। कालेज के पास ही किराये पर एक कमरा ठीक किया। बड़ी मेहनत करनी पड़ी उसे काशिमिर और ब्रोन्या को यह समझाने में कि उसका कालेज के पास रहना जरूरी है। ब्रोन्या ने पहले तो

ना-नू की। लेकिन हारकर मारी की बात उसे माननी ही पड़ी।

पेरिस में था क्यार्ते ल्यातां नाम का एक मोहल्ला। इस मोहल्ले में रहा करते थे पेरिस के गरीब कलाकार और विद्यार्थी। वहीं था एक मकान। उस मकान की छठी मंजिल पर थी एक छोटी-सी बरसाती : बिना हवा की, बिना रोशनी की, सीलन भरी बरसाती। यहीं रहने लगी मान्या। यहां कोई भी उसकी तपस्या में विघ्न नहीं डाल सकता था। फिर, मारी इतने लजीले स्वभाव की थी कि किसी से सहज मिलती-जुलती भी न थी। कालेज में, काम के दौरान में जिनके साथ उसका सम्पर्क होता, उनके साथ कालेज से बाहर उसका कोई सम्पर्क न था। मारी का तो हर क्षण कीमती था।

यहीं मारी दिन बिताने लगी—एकाग्र साधना में डूबी हुई, पढ़ने-लिखने में व्यस्त।

मारी को अध्ययन में बहुत आनन्द आता। खासकर प्रोफेसर पॉल आपेल के भाषणों में। प्रोफेसर आपेल के भाषण सुनती वह कभी न थकती, कभी न अघाती।

गृह! उपगृह! नक्षत्र! हजारों-लाखों-करोड़ों मीलों की दूरियां! प्रोफेसर आपेल इनके सम्बन्ध में

कुछ इस विधि से बताते मानो जादू का तमाशा दिखा रहे हों।

वह कहते : "लो, देखो! मैं सूरज को हाथ में लेकर नचाता हूं...!"

भौहों के नीचे दबी मारी की आंखें चमक उठतीं! वाह री निराली दुनिया! मधुर संगीत के स्वर में बंधा हुआ यह अनोखा विश्व!...'मैं सूरज को हाथ में लेकर नचाता हूं!'

परीक्षा ज्यों-ज्यों नजदीक आती, मारी अधिकाधिक खोई-खोई दिखायी देती। खाने-पीने तक की सुधि न रहती। घर को गरम रखने के लिए आग जलाना भी अक्सर भूल जाती। लिखते-लिखते ठंड से उंगलियां सिकुड़ जातीं तब कहीं ध्यान आता कि आज कोयला लाना भूल गयी थी। जब बहुत भूख लगती तो पोलैण्ड से अपने साथ लाया स्पिरिट-लैम्प जलाकर एक प्याला चाय गरम कर लेती। यही उसका उस दिन का भोजन होता। खाना बनाने में तो आखिर समय लगता है न! सो मारी को खाना बनाना भी अखरता। काशिमिर और ब्रोन्या के मित्र अक्सर मारी की खिल्ली उड़ाते : "सुना भाई? हमारी मारी स्क्लोडोव्स्का तो शोरबा पकाना तक नहीं जानती।"

लेकिन कितने दिन चलता इस तरह ? धीरे-धीरे मारी का शरीर निढाल हो चला। एक-आध बार तो वह बेहोश तक हो गयी। लेकिन, वह कमजोर क्यों होती जाती है, क्यों बेहोश हो जाती है, इसका रहस्य उसकी समझ में न आया। निदान जो होना था वही हुआ। एक दिन उसकी शक्ति ने जवाब दे दिया।

एक दिन की बात है।

कालिज की अपनी एक सहेली के सामने ही मारी बेहोश हो गयी। सहेली बेचारी घबड़ा उठी। भागी-भागी काशिमिर ओर ब्रोन्या के घर पहुंची। काशिमिर भी काम-धाम छोड़कर भागे और छै-तल्ले वाले मकान में पहुंचे। कमरे में घुसते ही उन्होंने सतर्कता से चारों ओर देखा।

यह क्या ? मान्या खाना पकाती है, इसका कोई चिह्न नहीं ! कड़े स्वर में उन्होंने पूछा : "मारी ! तुमने क्या खाना खाया है आज ?"

"आज ? याद नहीं पड़ता। हां, खाया तो है कुछ देर पहले।"

"मैं पूछता हूं क्या खाया है ?"

"खाया है... यही... कुछ फल और...और... बहुत कुछ...।"

अब काशिमिर का क्रोध उबल पड़ा। आव देखा न ताव, तुरत गाड़ी की, और ले गये मारी को अपने घर। ब्रोन्या अपनी बहन की सेवा में तन-मन से जुट गयी। देखते ही देखते मारी के चेहरे की स्वाभाविक लाली लौट आयी। स्वस्थ होकर मारी ने विदा मांगी। लेकिन वे लोग क्यों मानने लगे ? आखिर मारी ने बार-बार विश्वास दिलाया कि वह अपने शरीर की पूरे जतन से देख-माल करेगी। तभी ब्रोन्या ने उसे वहां से हटने की इजाजत दी।

अब आ पहुंचे नतीजे के दिन। बड़ी बेसब्री से कटे ये दिन। और...

एक दिन मारी यूनिवर्सिटी पहुंची। उसे मालूम हुआ कि वह प्रथम उत्तीर्ण हुई है। सब के सब अचम्भे में आ गये। कोई सोच भी नहीं सकता था कि इस लड़की — इस लजीली, गरीब, विदेशी लड़की — के दिमाग में इतना ज्ञान, इतनी बुद्धि भरी है।

भीड़ की भीड़ उसे बधाई देने आयी।

लेकिन मारी ? मारी सबसे बचकर अपने छोटे से कमरे में भाग आयी। वहीं से वह पोलैण्ड के लिए रवाना हो गयी।

बापू की दुलारी मान्या, फिर बापू के पास लौट चली।

लौटकर घर पहुंची तो मान्या ने देखा कि घर की हालत बहुत खराब है। उसका दिल बैठ गया। ऊंची शिक्षा के लिए दुबारा पेरिस जाने की कोई सम्भावना न दिखाई देती। लेकिन इस बार भी पिछली बार की तरह उसे एक अच्छा मौका मिल गया। एक थीं धनी पोलिश महिला। वह मान्या को बहुत मानती थीं। कोशिश करके उन्होंने उसे "अलेक्जान्द्रोविच स्कॉलरशिप" दिला दी। यह स्कॉलरशिप उन्हीं तेज बुद्धि वाले विद्यार्थियों को मिलती थी जिनके बारे में समझ लिया जाता था कि वे सचमुच विदेश जाने लायक हैं।

अब मारी दुगने उत्साह से पेरिस लौटी। उसकी आर्थिक दशा इस बार पिछली बार से भी ज्यादा खराब थी। चादर का एक कोना खींचती, तो दूसरा हट जाता। खर्चा किसी तरह पूरा न पड़ता। उसका एक बहुत पुराना साथी था : जूता। उससे भी अब बिछोह के दिन आ गये थे। घिसटते-घिसटते बेचारे ने मुंह फैला दिया था। अब तो नया जूता खरीदना होगा। दूसरा कोई चारा नहीं। उसने नया जूता खरीदा तो हाथ की रही-सही पूंजी भी गायब। घर में आग जलाने तक को पैसा नहीं। कमरा इस बार भी

छै-तल्ले पर ही लिया था। छै-तल्ले पर का कमरा, कड़ाके की सर्दी। सर्दी में घर हो जाता जैसे बर्फ। पढ़ते-पढ़ते दांत किट-किट-किट-किट बोलने लगते। ठंड के मारे रात में पलक न लगती। सर्दी हड्डियों को काटे देती थी।

दो बरस तक किसी तरह जोड़-जोड़कर बचाये दो कपड़ों में मारी ने दिन काटे थे। इन कपड़ों का रंग तक उड़ चला था अब। गर्म कोट तार-तार हो रहा था, मानो बिल्कुल जवाब दे बैठने की धमकी दे रहा हो।
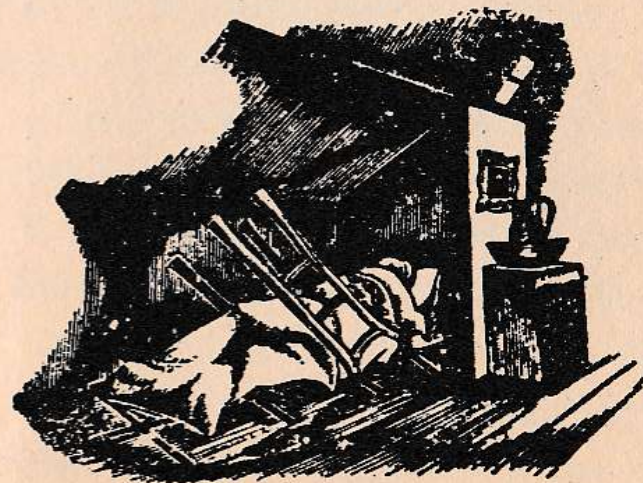
मारी रात को अपना ट्रंक खोलती। वही टूटा-फूटा ट्रंक। टंक से वह निकालती कपड़े-लत्ते। इन्हीं

कपड़ों को बदन से लपेट कर सो जाती। लेकिन सर्दी? कम्बख्त सर्दी तब भी हटने का नाम न लेती। अब तो मारी एक कुर्सी खींचती और उसे भी उलटकर अपने ऊपर डाल लेती और आंखें बन्द करके सोने की कोशिश करती। उधर, पानी के बर्तन में बर्फ की मोटी तह जम जाती।

ऐसी थी मारी। अपनी तरफ से एकदम बेखबर। काम की धुन में बिल्कुल दीवानी।

सो, मारी एक अध्यापक के मन को भा गयी। अध्यापक महोदय का नाम था पियरे क्यूरी। थे तो वह अभी तरुण ही, लेकिन बड़े प्रतिभाशाली वैज्ञानिक थे। मारी को उन्होंने छात्रा के रूप में देखा था। उन्हें मारी में असाधारण योग्यता मिली थी। मारी को उन्होंने अपनी जीवन-संगिनी बनाना चाहा। उन्होंने सोचा: हम दोनों मिलकर सारा जीवन विज्ञान की साधना में लगा देंगे। एक दिन उन्होंने मारी के सामने विवाह का प्रस्ताव रख ही तो दिया।

मारी बड़े असमंजस में है, क्या करे, क्या न करे। पियरे क्यूरी हैं फ्रान्सवासी। उनसे विवाह करने का मतलब यह है कि सारा जीवन फ्रान्स में बिताना होगा। भला मारी कैसे हमेशा के लिए अपने देश को छोड़

सकती थी? मारी ने आपत्ति की: "पोलैण्ड निवासियों को अपना देश छोड़ने का अधिकार नहीं है।" पियरे ने उत्तर दिया: "अच्छी बात है! चलो, मैं ही फ्रान्स छोड़ दूंगा।"

अब तो मारी और भी संकट में। पियरे क्यूरी जैसे वैज्ञानिक! पोलैण्ड जायेंगे तो गुलाम पोलैण्ड में करेंगे क्या? बहुत करेंगे, बहुत करेंगे, तो मास्टरी कर लेंगे। यही न! पोलैण्ड में वैज्ञानिक खोज करने की भी तो कोई सुविधा न थी। मास्टरी के अलावा जीविका का दूसरा कोई साधन पोलैण्ड में हो नहीं सकता था। अन्त में मारी के भाई-बहनों ने सलाह दी कि वह विवाह करले और फ्रान्स में रहे।

पियरे के पिता थे डाक्टर। बड़े उदार, बड़े शिष्ट। पियरे की माताजी भी बड़ी तेजस्वी थीं। जितनी तेजस्वी थीं, उतनी ही साहसी भी। सामाजिक रूढ़ियों, सड़े-गले संस्कारों के पीछे आंखें मूदकर चलने वाले न थे ये लोग।

अपने बेटों को भी उन्होंने आजादी से जीवन बिताना सिखाया था।

पियरे के भाई थे जैक। पियरे और जैक दोनों में असाधारण प्रतिभा थी। बचपन से ही दोनों

वैज्ञानिक खोज और प्रयोगों में बहुत आगे बढ़ गये थे। पियरे ने सोलह वर्ष की उम्र में ही बी. एस-सी. की परीक्षा पास कर ली थी, वह भी सम्मान के साथ। इतना ही नहीं ! अन्वेषण के क्षेत्र में नये-नये अन्वेषण करके, नई-नई खोजें करके, दोनों भाइयों ने सबको आश्चर्य में डाल दिया था। लेकिन विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने उनकी खोजों का जो पुरस्कार दिया वह सिर्फ यह कि उनकी पीठ ठोंक दी। बस !

अठारह वर्ष की उम्र। इसी उम्र में पियरे ने एम. एस-सी. की परीक्षा पास कर ली। उन्नीसवें वर्ष में वह प्रयोगशाला में सहायक के पद पर नियुक्त हो गये। जैंक को या उन्हें इसके अलावा न तो कोई पुरस्कार मिला, न उपाधि। उल्टे, दोनों भाइयों को अलग करने का इंतजाम कर दिया गया। जैंक को एक कालेज में अध्यापक होकर चले जाना पड़ा। पियरे को "स्कूल ऑफ फिजिक्स एंड केमिस्ट्री" में पढ़ाने का काम मिला।

अब तक एक साल वीत चुका था। मारी राजी हो गयी ! बहुत उधेड़बुन के बाद मारी पियरे के साथ विवाह करने को राजी हो गयी। बहुत से लोगों ने तो उसके विवाह की आशा ही छोड़ दी थी। अपनी धुन

की पक्की लड़की ! एक लीक पर चलने वाली ! अपने देश पर जान देने वाली ! वह शादी करेगी पियरे से और रहेगी फ्रान्स में ?

आखिर एक दिन नाते-रिश्तेदारों, सगे-सम्बंधियों, घनिष्ट मित्रों की शुभ कामनाओं सहित मारी स्क्लोडोव्स्का मादाम क्यूरी बन गयी। पियरे और मारी का यह संयोग, विज्ञान के क्षेत्र में सचमुच एक ऐतिहासिक घटना है।

अब उन्होंने अपनी गृहस्थी जमायी। दोनों ही काम के पीछे दीवाने प्राणी थे। छोटी-मोटी घरेलू बातों में कीमती समय बरबाद न हो, इसका उन्होंने पूरा बन्दोबस्त कर लिया था। फिर भी, मामूली मध्यवर्गी परिवारों की तरह इन दोनों को भी परेशानियों में उलझना ही पड़ता, परेशानियों से पूरी तरह मुक्ति न मिल पाती। हिसाब-किताब रखना, बाजार-हाट करना, नाश्ता-खाना बनाना, कपड़े-लत्ते धोना... सब कुछ उन्हें ही तो करना था। मारी स्क्लोडोव्स्का तो शोरबा बनाना तक न जानती थी। लेकिन, मादाम क्यूरी को तरह-तरह के पकवान बनाने सीखने पड़े। पाक्विद्या सीख ही तो ली मादाम क्यूरी ने किताब देख-देखकर। वह ऐसी तरकारियां बनातीं जिन्हें पकाने में समय तो कम लगता लेकिन जायका होता बढ़िया।

पर, जिनके लिए वह यह सब करतीं उन पियरे महोदय को इसका ध्यान भी न रहता कि वह क्या खा रहे हैं, क्या नहीं। एक बार एक भले घर की महिला ने पियरे साहब को एक तरह की मिठाई बनाकर खिलाई। पियरे किसी ध्यान में डूबे मिठाई और खाना

खाते रहे। खाना खत्म कर चुकने पर भी मिठाई के बारे में उन्होंने कुछ नहीं कहा। सो, उन महिला से अब और सब्र न किया गया। पूछ बैठीं :

"कैसी लगी आपको ?"

"क्या ?"

"मिठाई, और क्या ?"

"ओह ! मैं मिठाई खा रहा था !" ताज्जुब से पियरे ने उस महिला की ओर देखा। महिला भौंचक्की रह गयी। क्या कहे, क्या न कहे, समझ में न आया।

मौका मिलने पर मारी पियरे के साथ ससुर के घर भी रह आती। काम की धुन वहां भी पियरे का साथ न छोड़ती। वहां उनके लिए दो अलग-अलग कमरे ठीक कर दिये गये थे।

नाटक-थियेटर जाने का मौका भी उन्हें मुश्किल से मिलता। वारसा में मारी की छोटी बहन हेला की शादी हुई। लेकिन काम का दबाव इतना था कि पियरे उसमें शामिल न हो सके।

विश्वविद्यालय की परीक्षा में इस बार भी मारी प्रथम आई। बहुत दिनों के बाद अब दोनों ने साइकिल पर झोला टांगा और बड़े उत्साह से पहाड़ पर छुट्टियां बिताने चल पड़े।

सन् १८९७। मारी की गोद में पहली सन्तान आई। गोरी-चिट्टी, मोटी-सलोनी लड़की ! मां की गोद उजागर करने वाली ! नाम रखा गया इरीन !

इरीन के कारण मारी को शुरू-शुरू मे काफी तकलीफ उठानी पड़ी। उसे नहलाना धुलाना, खिलाना-

पिलाना, सुलाना, और फिर खाना बनाकर, बाजार होकर प्रयोगशाला जाना। जैसा कि स्वाभाविक था, कठोर परिश्रम से मारी का स्वास्थ्य गिरने लगा। इरीन की देख-भाल के लिए दायी रखनी पड़ी। उधर इरीन के बाबा भी तो थे। इरीन के पैदा होने के थोड़े दिनों बाद ही पियरे की मां की मृत्यु हो गयी। पियरे के पिता, डाक्टर क्यूरी, अब बेटे और बहू के साथ ही रहते। इरीन उनसे बहुत हिल गयी थी। मारी को इससे लाभ ही हुआ। वह बेटी को बाबा के हाथों सौंपकर, निश्चिन्त होकर, प्रयोगशाला में काम कर सकती थी।

इरीन क्यूरी ने बड़ी होकर माता-पिता के यश में चार-चांद लगाये। मारी क्यूरी की तरह उसकी गिनती भी संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों में हुई। इरीन और उसके पति जोलियो क्यूरी भी मारी और पियरे क्यूरी की तरह थे। जोलियो क्यूरी ने पदार्थ विज्ञान में नोबल पुरस्कार पाया और विज्ञान को समाज के कल्याण में लगाने के लिए जी-जान से काम किया।

अदृश्य किरण

इरीन के जन्म से पहले ही मारी सारबान विश्व-विद्यालय् की परीक्षा समाप्त कर, डाक्टरेट की डिग्री लेने की बात सोच रही थी। वह चाहती थी कि वैज्ञानिक खोज-बीन के लिए कोई एकदम नया विषय चुने। वैज्ञानिकों के पिछले दिनों प्रकाशित लेखों की छान-बीन में वह लगी रहती।

डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं था! इसके लिए जरूरी था कि किसी ऐसी चीज का पता लगाया जाय जिसकी पहले किसी को टोह न मिली हो, या किसी ऐसी गुत्थी को सुलझाया जाय, जिसका अभी तक कोई हल न निकला हो।

मारी जिस प्रयोगशाला में काम करती थी, उसके अध्यक्ष थे पियरे क्यूरी। सो, खोज-बीन का विषय चुनने में मारी को सबसे अधिक सहायता मिली पियरे से ही।

यह तो तुम जानते ही हो कि पियरे फ्रांस के एक

बड़े वैज्ञानिक थे। पदार्थ-विज्ञान में उनके ज्ञान और अनुभव की थाह नहीं थी।

मारी और पियरे दोनों बातें किया करते...।

क्या बातें किया करते ?

यही कि ऐसी कौन-सी चीजें हैं, जिनके बारे में आदमी को आज तक कुछ नहीं मालूम ? किसी ऐसी चीज का भेद पाना होगा, जो न सिर्फ आदमी की जानकारी बढ़ाये बल्कि उसके काम भी आये।

वैज्ञानिक क्षेत्र में उन दिनों रोज नये-नये आविष्कार हो रहे थे। इन आविष्कारों को लेकर वैज्ञानिक दीवाने हो रहे थे। बहुत खोज-बीन के बाद वैज्ञानिकों ने घोषणा की थी कि संसार में कुल मूल-तत्व ९२ हैं। ये मूल-तत्व ऐसे होते हैं कि चाहे जितना बांटों-चूंटो, बारीक से बारीक भागों में विभाजित करो, उनकी प्रकृति, उनका मौलिक गुण, नहीं बदलता।

मादाम क्यूरी ने डाक्टरेट की डिग्री के लिए जो विषय चुना, और जो खोज उन्होंने की, उससे वैज्ञानिक जनता में बड़ी हलचल मची। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि ऊपर बताये मूल-तत्वों के अलावा और भी मूल-तत्व हैं। इनके बारे में अभी तक किसी को कुछ मालूम नहीं था। इन्हीं दिनों हेनरी बेकरेल नामक पेरिस के

एक अध्यापक ने रंटजन किरण के बारे में लेख लिखा। उन्होंने एक नयी किरण का पता लगाया था। इस किरण का नाम रखा गया 'एक्स-रे'। 'एक्स-रे' का दूसरा नाम रंटजन किरण भी है। इसकी विशेषता यह है कि डाक्टर लोग इसकी मदद से मानव शरीर के रक्त-मांस को भेदकर चमड़े के नीचे की हड्डियों का भेद जान लेते हैं।

जैसा कि स्वाभाविक था, इस किरण के बारे में वैज्ञानिकों ने बड़ा उत्साह दिखाया। इसी किरण के बारे में खोज करते-करते बेकरेल को एक दिन पता चला कि यूरेनियम नाम की धातु से भी एक प्रकार की अदृश्य किरण निकलती है।

कैसी अद्भुत किरण है यह ! मारी तो मुग्ध हो गयी। बेकरेल की खोज के बारे में पियरे और मारी में बड़ी गम्भीर बातें हुआ करतीं। बेकरेल अभी तक केवल इतना ही कह पाये थे कि इस तरह की किरण मौजूद है। अब यह पता लगाना कि वास्तव में यह चीज है क्या मारी का काम था। अन्त में फैसला हुआ कि इस किरण के बारे में खोज-बीन को ही मारी डाक्टरी की डिग्री का विषय चुने।

लेकिन कठिनाइयां ! कठिनाइयां बहुत-सी थीं।

सबसे बड़ी कठिनाई यही थी कि इस विषय पर पुस्तकें नहीं थीं। न ही इस विषय को कोई अध्यापक पढ़ाता था। बेकरेल महोदय केवल इतनी मदद कर सकते थे कि कह दें: हां, इस तरह की किरण मौजूद है। इस विषय पर खोज-बीन के लिए प्रयोगशाला चाहिए थी; साज-सामान चाहिए था।...यह सब कौन जुटायेगा ?

बहुत कोशिश-पैरवी और पदार्थ-विज्ञान विभाग के अधिकारियों से विनय-प्रार्थना करने के बाद मारी के लिए विश्वविद्यालय की निचली मंजिल में एक सीलन भरा कमरा मिला। कमरा क्या था, फालतू गोदाम समझो उसे ! दिमाग ठिकाने रखना और काम करना—दोनों बातें बहुत कठिन थीं यहां। गर्मी में उमस और पसीने से बुरा हाल। जाड़ों में ठंड; प्रयोग के बारीक औजार काम न करें। लेकिन यहां कोई मारी की तपस्या में विघ्न डालने वाला नहीं था। एकचित्त होकर अपने औजार से वह यूरेनियम के कण-कण की जांच करती। यह औजार किसी और ने नहीं, स्वयं पियरे क्यूरी ने उसके लिए तैयार किया था।

औजार बहुत पेचीदा न था। अदृश्य किरण का एक विशेष गुण वैज्ञानिकों को खास महत्व का लगा। यों तो किसी गैस या हवा के भीतर से बिजली नहीं

दौड़ सकती, लेकिन दौड़ भी सकती है—अगर उसमें अदृश्य किरण पड़ जाये।

तुम्हें पियरे वाले औजार के बारे में कुछ बता दूं ?

इस औजार में धातु की दो पत्तियां थोड़े से फासले पर बैठायी गयी थीं। इन पत्तियों के बीच जरा-सी यूरेनियम रखने की देर होती कि दोनों पत्तियों के बीच से, हवा के भीतर से, बिजली दौड़ने लगती। क्यों होता ऐसा ? बस, यूरेनियम से निकलने वाली उसी अदृश्य किरण के कारण। कितनी बिजली दौड़ रही है, इसका भेद भी बिजली मापने के यंत्र से मालूम हो जाता। बिजली के प्रवाह को मापकर अनुमान लगाया जा सकता था कि यह अदृश्य किरण कितनी शक्तिशाली है।

मारी सोचने लगी...

क्या ?

वह सोचने लगी कि यूरेनियम के सिवा और किसी धातु से भी इस तरह की किरण निकलती है या नहीं। सो, उसने एक फैसला किया।

फैसला यह कि संसार के सभी जाने-पहचाने तत्वों को जांचकर देखेगी कि किसी और से ऐसी किरण निकलती है या नहीं।

कितनी हिम्मत का काम था ! सोच कर ही ताज्जुब होता है ।

घर-गृहस्थी, पति, ससुर, बेटी ! सभी से मारी को अगाध प्रेम था । मारी ने कभी अपने कर्त्तव्य में लापरवाही नहीं की थी । और अब एक अज्ञात किरण को पकड़ने की उत्सुकता से उसके चेहरे पर नयी चमक, आंखों में नयी रोशनी, आ गयी थी ।

जितनी धातुओं का अब तक पता था, सभी को मारी ने जांच कर देखा । पता चला कि थोरियम नाम की जो धातु है, उससे भी इसी तरह की अदृश्य किरण निकलती है । किसी धातु से अदृश्य किरण निकलने के गुण का नाम उन्होंने रखा—तेजस्क्रियता । अंग्रेजी में तेजस्क्रियता को कहते हैं—रेडियो-ऐक्टिविटी ।

लेकिन यह तेजस्क्रियता दो ही धातुओं में क्यों ? मारी की उत्सुकता का ठिकाना न था । एक पल वह शांत न बैठ सकी । सीधी म्यूजियम पहुंची । जितने भी खनिज पदार्थ वहां थे, सब की परीक्षा करके वह देखेगी ।

इन खनिज-पदार्थों में से बहुतों के गुण-अवगुणों का पता वैज्ञानिक लोग पहले ही लगा चुके थे । मारी को अब केवल उन्हीं पदार्थों की परीक्षा करनी थी

जिनके तेजस्क्रिय होने की सम्भावना थी । 'सम्भावना वाले' ऐसे ही एक पदार्थ को चुनकर मारी ने उसमें से यूरेनियम और थोरियम धातुओं को अलग किया और उनकी परीक्षा की । अलग-अलग परीक्षा के बाद उसने शेष पदार्थ की परीक्षा की ।

मारी आश्चर्य से हक्की-बक्की रह गयी । उसने बार-बार परीक्षा की । कम से कम बीस बार परीक्षा की । बड़े अचरज की बात है ! यूरेनियम और थोरि-यम में जितनी तेजस्क्रियता है उससे कहीं ज्यादा तेज-स्क्रियता इस पदार्थ में है ।

तब ?

तब मारी ने सोचा कि जरूर कोई चीज ऐसी है जो यूरेनियम और थोरियम से भी ज्यादा शक्तिशाली है और यह तेजस्क्रियता उसी के कारण है ।

यह बात है १८९८ की । मारी ने एक वैज्ञानिक लेख लिखा । लेख में उसने घोषणा की कि पीचब्लेंड और चारकोलाइट खनिज-पदार्थों में यूरेनियम और थोरियम से अधिक—हां कई गुनी अधिक—तेजस्क्रियता है । पता चलता है कि इन खनिज पदार्थों में, थोड़ी मात्रा में ही सही, कोई ऐसी चीज जरूर है जो बहुत

शक्तिशाली है और जिस पर वैज्ञानिकों की अब तक नजर नहीं पड़ी।

अब तो अपना खोज-बीन का काम छोड़ पियरे भी मारी के काम में हाथ बटाने लगे। मारी का काम था भी तो बहुत महत्व का। मारी और पियरे की मिली-जुली ताकत इस अनजानी चीज का पता लगाने में जुट गयी।

मारी की इन दिनों की डायरी को देखकर बड़ा अचरज होता है। उसमें एक ओर जहां विज्ञान की चर्चा है, वहां घरेलू जीवन की छोटी-मोटी समस्याओं, मामूली सुख-दुःख की भी चर्चा है। मारी की प्रयोग-शाला थी एक गोदाम में। इस गोदाम का तापमान घटते-घटते शून्य के निकट पहुंच जाता तो मारी मानो ठंड का मजाक बनाती हुई, तापमान दर्ज कर, उसके आगे दस विस्मयसूचक चिह्न बना देती। इरीन की उसके पास एक अलग डायरी थी। बिटिया की सभी बातें इस डायरी में लिखी जातीं।

लो, दो-एक जगह से पढ़कर तुम्हें सुना ही दूं। एक जगह लिखा है : "इरीन हाथ उठाकर 'थेंक यू' कहना सीख गयी है। घुटनों के बल खूब दौड़ती है। तुतला-तुतलाकर बोलती है।"... आगे की एक तारीख

में लिखा है : "नीचे की कतार में बाईं ओर इरीन का सातवां दांत निकल आया है। एक-आध मिनट को अब खड़ी भी होती है।"... बीच-बीच में इरीन का वजन भी लिखा है। एक जगह मारी ने लिखा है : "आठ पौंड फलों में आठ पौंड चीनी दस मिनट उबालने के बाद पतले कपड़े से छान ली। चौदह बोतल बढ़िया काली जेली तैयार करके रख दी है।"

इन छोटे-मोटे घरेलू कामों के साथ ही खोज-बीन का काम भी होता।

एक रसायनिक विधि से पीचब्लेंड के अलग-अलग भाग करके हर भाग की तेजस्क्रियता को उन्होंने अलग-अलग नापा। किसी भाग में बहुत ज्यादा तेजस्क्रियता मिली, किसी भाग में बिल्कुल नदारत। अब तेजस्क्रिय भाग को रसायनिक विधि से और भी छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटा गया। पहले की तरह हर टुकड़े की फिर अलग-अलग परीक्षा की गयी। इस तरह उन्होंने पीचब्लेंड के तेजस्क्रिय अंश को धीरे-धीरे अलग करना शुरू किया। कुछ दिनों तक परीक्षा करने के बाद पता चला कि दो अलग-अलग भागों में तेजस्क्रियता पायी जाती है।

१८९८ का जुलाई महीना। एक भाग को शोध-

कर आखिर उसके तेजस्क्रिय तत्व को अलग कर ही लिया गया।

"क्या नाम होगा इस 'नवजात शिशु', यानी इस शोधे हुए तत्व का?" पियरे ने मारी से पूछा।

हां! क्या नाम होगा? मारी सोच में पड़ गयी। बहुत सोचा उसने। अपने देश के बारे में सोचा। गुलाम पोलैंड के बारे में सोचा। वह सोचती रही, सोचती रही। सोच चुकने के बाद पियरे के कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से बोली: "इसका नाम होगा— पोलोनियम!"

उस साल के दिसम्बर महीने तक उन्हें यह भी पता चल गया कि एक बहुत शक्तिशाली, बहुत तेजस्क्रिय पदार्थ मौजूद है, हालांकि अभी तक वे उसे अलग नहीं कर पाये। इसका नाम उन्होंने रखा— "रेडियम"।

इस अजनबी का नाम तो उन्होंने रख लिया। लेकिन कैसा है उसका चेहरा-मोहरा, कैसा है उसका रूप-रंग, यह कुछ पता न था। वैज्ञानिकों ने कहा: "जब तक आंख से उसे देखें नहीं, हाथ से परखें नहीं, तब तक क्या मालूम कि वह है भी या नहीं।"

पियरे और मारी ने अपने कार्य को अब और आगे बढ़ाया। शोध-कार्य के लिए जितने पीचब्लेंड की—रेडियम निकालने के लिए—जरूरत थी, उतना खरीद पाना उनके बस की बात नहीं थी। यहां तो जैसे-तैसे गृहस्थी खींची जा रही थी। खर्च इधर बढ़ाओ तो उधर तंगी, और उधर बढ़ाओ तो इधर तंगी। किसी तरह खर्चा पूरा पड़ता ही न था। पीचब्लेंड खरीदें तो कैसे?

आखिर उन्हें एक बात सूझी। उन्होंने तय किया कि बोहेमिया के एक कारखाने से, जहां पीचब्लेंड का प्रयोग किया जाता था, प्रयोग किया हुआ पीचब्लेंड खरीद लेंगे। कारखाने वाले करते यह थे कि कांच बनाने के लिए पीचब्लेंड से यूरेनियम निकालकर फिर उसे फेंक देते थे। सो, जब कारखाने वालों ने सुना तो कहा कि गाड़ी का खर्चा देकर यह फेंका-फिकाया सामान जितना चाहो उठा ले जाओ। बेशक, गाड़ी का किराया जरूर देना होगा। लेकिन गाड़ी का किराया भी तो कम न था!

दिन बदले हफ्तों में, हफ्ते बदले महीनों में, महीने बदले वर्षों में।

लोहे के बड़े-बड़े कड़ाहे। इन कड़ाहों में मारी उबालती पीचब्लेंड। एक बड़ी लाठी से चला-चलाकर शुद्ध करती उसे। मारी और पियरे दोनों एक-से-एक नये प्रयोग करते। काम की धुन में नहाने-धोने, खाने-

पीने की भी सुध न रहती। दोनों की आंखों में एक सपना समाया हुआ था।

एक दिन पियरे कह ही तो बैठे : "मुझे आशा है कि उसका रूप-रंग बहुत सुन्दर होगा।"
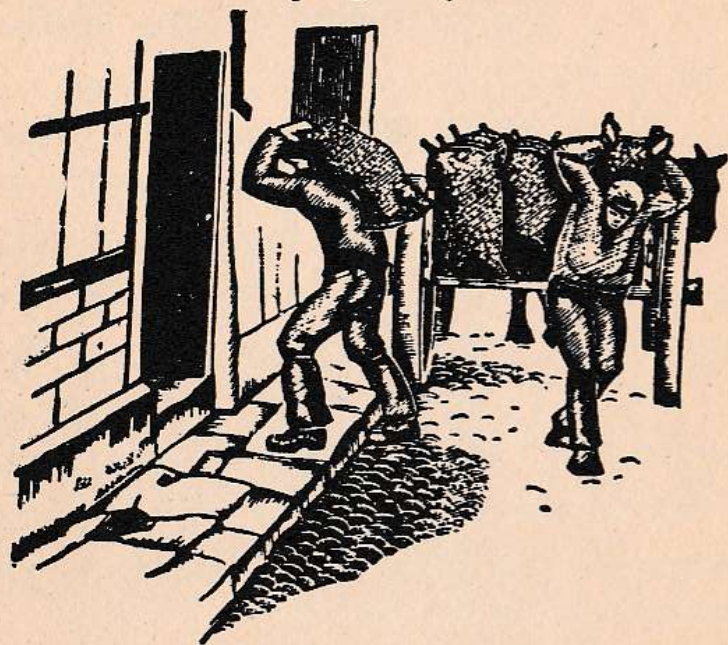
सन् १९०० में फ्रान्स के रसायन-विज्ञान शास्त्री आन्द्रे देवियर्न भी मारी और पियरे की मदद के लिए आ पहुंचे। उन्होंने समान जाति के एक और पदार्थ की सूचना दी। पोलोनियम और रेडियम को आंखों से देखने के पहले ही, देवियर्न ने 'एक्टिनियम' को खोज निकाला था।

रेडियम का आविष्कार

सन् १९०२। मारी और पियरे को काम करते पूरे तीन साल नौ महीने हो चुके हैं।

आखिर एक दिन दोनों ने पीचब्लेंड के शुद्ध किये अंश में कुछ चमकते कण देखे। आसमान में जैसे तारे चमकते हैं न, वैसे ही। अपने पूरे सौन्दर्य सहित रेडियम मानव की पकड़ में आ गया था। मारी और पियरे ने मापकर देखा। उसका पारमाणविक भार था २२६।

अब तो पूरे वैज्ञानिक जगत ने पियरे और मारी के सम्मान में सिर झुका दिया।

रेडियम के आविष्कार से वैज्ञानिकों को ऐसी अजीब-अजीब बातें मालूम हुईं कि उन्हें तुम विज्ञान का जादू भी कह सकते हो। उन्हें मालूम हुआ कि रेडियम और दूसरे जिन तेजस्क्रिय मूल तत्वों का पता लगा है, उनका एक और भी गुण है। गुण यह कि अपने भीतर से तेज बिखेरते-बिखेरते वे दूसरे तत्वों में

बदल जाते हैं। इससे पहले वैज्ञानिक समझते थे कि मूल तत्व सदा एक जैसे रहते हैं; कभी किसी तरह बदलते नहीं। लेकिन रेडियम ने उनकी इस धारणा को बदल दिया।

रसायन-विज्ञान के इतिहास में रेडियम के आविष्कार का बहुत भारी महत्व था। मूल तत्व की गठन को जांचते-जांचते मालूम हुआ कि उसके केन्द्र में दो तरह के कण जुड़े होते हैं। एक होता है न्यूट्रोन और दूसरा प्रोटोन। रेडियम के केन्द्र में बहुत सारे न्यूट्रोन और प्रोटोन होते हैं। बाद में क्यूरी और दूसरे वैज्ञानिकों की खोजों से मालूम हुआ कि रेडियम और दूसरे भारी पदार्थों के केन्द्र में इतने कणों के होने से उनमें अस्थिरता आ जाती है। परिणाम यह होता है कि जरा-जरा सी देर बाद, दो-दो चार-चार की संख्या में, ये कण केन्द्र से छूटकर अलग निकल पड़ते हैं। दर-असल इसी का नाम है तेजस्क्रियता। रेडियम के केन्द्र से जो अदृश्य किरण निकलती हैं, उसमें मिली होती हैं तीन किरणें। मालूम है इनके क्या नाम हैं? इन्हें कहते हैं: अल्फा, बीटा और गामा। अल्फा किरण हीलियम के परमाणु का केन्द्र है। उसमें होते हैं दो प्रोटोन और दो न्यूट्रोन। बीटा किरण होती है तेज

दौड़ने वाली निगेटिव विद्युत का कण, या कह लो इलेक्ट्रान। और गामा किरण होती है साधारण प्रकाश जैसी। अन्तर केवल यह होता है कि साधारण प्रकाश से उसकी तरंग कम बड़ी होती है।

तेजस्क्रियता के कारण रेडियम का हर परमाणु तेज बिखेर चुकने के बाद, यानी विकिरण के बाद, एक दूसरे मूल तत्व में बदल जाता है। हम तुम्हें बता चुके हैं कि वैज्ञानिकों का अब तक विचार था कि मूल तत्व बदलते नहीं हैं। लेकिन सच पूछो तो रेडियम का परमाणु धीरे-धीरे, क्रमशः बदलते-बदलते, करीब दो हजार वर्षों में एक तरह का शीशा बन जाता है।

इस आविष्कार का एक नतीजा और हुआ। नतीजा यह कि इस आविष्कार के सूत्र को पकड़कर परमाणु के भीतर से निकलने वाले तेज को काम में लाने की कोशिशें होने लगीं। इस तरह कुछ दिनों बाद यूरेनिया के परमाणु के तोड़ने, या विघटन, का हाल मालूम हुआ। यह इस विघटन का ही परिणाम है कि ऐटम बम बनाये जा रहे हैं।

परमाणु को तोड़ना! इतने बारीक लक्ष्य को भेदना! भला यह कोई आसान काम था? पर आदमी इसमें भी सफल हुआ। दुःख की बात सिर्फ यह है कि

मानव कल्याण की जिस भावना को लेकर रेडियम का जन्म हुआ, उससे उल्टी दिशा में जाकर आज ऐटम और उद्जन बम बनाये जा रहे हैं। परमाणु केन्द्र के विस्फोट से बड़ी भारी शक्ति निकली। यही शक्ति जब बुरे आदमियों के हाथ में पड़ गयी तो बुरे कामों में लगायी जाने लगी। वह विनाश और विध्वंस करने लगी।

जिस रात उन्होंने रेडियम का आविष्कार किया उस रात सोचो मारी और पियरे कैसे लग रहे होंगे! काम के पीछे पागल दो व्यक्ति! कवि या दार्शनिक जैसे! परस्पर प्रेम और अनुभूति में डूबे दो निराले जीव!

मारी अभी घर लौटी ही थी कि इरीन ने "मां, मां..." की रट लगा दी। मारी उसके सिरहाने आ बैठी। बड़े प्यार से उसे मीठी- मीठी थपकियां देकर सुलाया। वह सो गयी तो मारी उसकी एक फ्राक सीने लगी। सीते-सीते अचानक उसने पियरे से कहा: "चलो, एक बार फिर उसे देख आयें।"

टूटी-फूटी बर्फ जैसी ठंडी प्रयोगशाला। उसमें भी था एक नन्हा शिशु। वह भी मां! मां! पुकार रहा था न!

"लाइट मत जलाना!" पियरे को रोकते हुए मारी ने कहा। प्रयोगशाला में घुप्प अंधेरा था। इस अंधेरे में बूंद-बूंद रेडियम की चमकती आंखें ऐसी लग रही थीं जैसे कोई नन्हा शिशु उनकी ओर टकटकी बांधे देख रहा हो। कड़ी मेहनत के चार वर्ष! इन चार वर्षों के बाद कृपण प्रकृति के हाथों से उन्होंने रेडियम के जो गिने-चुने कण छीने थे, वे सचमुच अनमोल थे।

घर पर वे दोनों जैसे सोती इरीन के मुंह की ओर स्नेह से देखते रह गये थे, वैसे ही वे चमकीले रेडियम के कणों पर आंखें गड़ाये रह गये।

आखिर मारी अपने पति से कह ही तो उठी: "अहा! देखो कितना सुन्दर है!"

रेडियम के आविष्कार ने दुनिया के बहुत से देशों में हलचल पैदा कर दी। फ्रांस ही एक ऐसा देश था जहां शुरू-शुरू में इस आविष्कार की कद्र नहीं हुई। पियरे की नौकरी में कोई तरक्की नहीं हुई। जहां थे वहीं रहे।

मामूली मास्टर की तनखाह। घर का सारा खर्च। ऊपर से मारी को विश्वविद्यालय में काम दिलाने की समस्या। कोई स्त्री आज तक इतने ऊंचे आसन पर नहीं बैठ सकी थी...खास कर वैज्ञानिकों के बीच।

विश्वविद्यालय में मारी को रखने के मसले पर चारों ओर से शोर-गुल होने लगा। ईर्ष्या के कारण कुछ लोगों ने तो उसे बदनाम तक करना शुरू कर दिया। एक नयी तरह की बीमारी थी यह। ऐसी बीमारी से मारी और पियरे पहले कभी नहीं जूझे थे। विज्ञान के पीछे पागल ये दोनों प्राणी चारों ओर की हालत को देखकर ऐसे रह गये जैसे उन्हें काठ मार गया हो।

इधर रेडियम की सम्भावनाओं को देखकर ब्रिटेन जैसे देशों के वैज्ञानिक तो दीवाने हो उठे। अब मालूम हुआ कि रेडियम यूरेनियम से बीस लाख गुना शक्तिशाली होता है। यह भी पता चला कि कैन्सर नाम के रोग में कोई चीज कारगर हो सकती है, तो रेडियम। मारी और पियरे ने रेडियम तैयार करने का तरीका निकाला। अमरीका आदि देशों में रेडियम तैयार होने लगा। क्यूरी दम्पत्ति ने जो तरीका निकाला था न, वही इस्तेमाल में लाया जाने लगा। मारी और पियरे से जब इसके लिए अनुमति मांगी गयी तो उन्होंने कहा : यह हमारी घरेलू सम्पंत्ति तो है नहीं; जनगण के कल्याण के लिए ही हमने रेडियम का आविष्कार किया था; रेडियम बनाने का तरीका हम सारे अखबारों में छपवा देंगे जिससे सब के काम आ सके।

मुनाफाखोर सेठों की तरह उन्हें रेडियम पर मुनाफा तो कमाना नहीं था !

उन्हें पहला पुरस्कार मिला स्विटजरलैण्ड से। इसके बाद इंग्लैण्ड से। इस बीच मारी को डाक्टरी की डिग्री भी मिल गयी। फ्रांस के अधिकारियों को आखिर इस साहसी लड़की का लोहा मानना ही पड़ा ! मारी को यूनिवर्सिटी में नौकरी मिल गयी। लेकिन फान्स उनके आविष्कार के लिए उचित पुरस्कार देने को अब भी तैयार न था।

सन् १९०३। दस दिसम्बर को पदार्थ-विज्ञान का नोबल पुरस्कार बांटा गया। पुरस्कार का आधा भाग पियरे और मारी को और आधा बेकरेल को मिला। पियरे और मारी का नाम सब ओर गूंज उठा। कितने गर्व की बात थी यह मारी के बापू और भाई-बहनों के लिए। उनकी नन्हीं-मुन्नी मान्या ! आज उसकी गिनती संसार के सबसे बड़े वैज्ञानिकों में थी। संसार में सबसे पहले किसी स्त्री को ऐसा यश प्राप्त हुआ तो उनकी मान्या को।

लेकिन सब दिन एक समान नहीं होते ! मारी के जीवन में उलट-फेर हुआ। उसकी गोद में एक

और नन्हीं मुन्नी आई। गुड़िया की तरह सुन्दर-सलोनी। नाम उसका रखा गया—ईव।

जैसे-तैसे दिन बीत रहे थे कि यकायक एक दिन एक भीषण दुर्घटना घटी।

एक दिन पियरे—वही पियरे जिनका मस्तिष्क नये-नये विचारों की खान के समान था, विचारों में खोये सड़क पर चले जा रहे थे। यकायक एक बग्घी-गाड़ी आई और उनका सिर उसके पहिए के नीचे आ गया।

दुःख से कतार मारी पागल हो उठी। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। उसके सुनहरे संसार में अंधेरा फैला-कर, पियरे मारी के जीवन से सदा के लिए विदा हो गये।

बेचारी मारी। अकेली रह गयी। जीवन में अब उसे अकेले ही जूझना था!

बड़ी लड़की इरीन और डाक्टर क्यूरी के सहारे मारी ने किसी तरह घर-गृहस्थी को टिकाये रखा। इरीन भी मां की तरह छोटी उम्र से ही विज्ञान के पीछे दीवानी थी। नन्ही-मुन्नी ईव की तोतली बोली और

इरीन की बातों से थोड़ा-बहुत सुख मिलता। उसी के सहारे मारी पियरे के अभाव को कुछ समय के लिए भूल जाती।

पियरे की मृत्यु के बाद मादाम क्यूरी से कहा गया कि वह पेंशन ले लें। किन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया। कहा—अभी मेरी काम करने की उम्र है, अभी से पेंशन क्यों लूं?

पियरे की मृत्यु से सारबान विश्वविद्यालय के अधि-कारी भी संकट में पड़ गये। पियरे के सूने आसन पर कौन बैठे? कोई भी पुरुष-वैज्ञानिक इतना योग्य नहीं था। अन्त में पदार्थ-विज्ञान विभाग का भार सम्भालने के लिए मादाम क्यूरी को ही बुलाया गया।

इससे पहले सारबान विश्वविद्यालय में किसी भी विभाग का इतना ऊंचा पद किसी महिला ने नहीं सम्भाला था।

मारी का जिस दिन पहला व्याख्यान हुआ, हॉल में तिल रखने की जगह न थी। झुंड के झुंड लोग यही सोचकर आये थे कि शायद कोई नाटकीय घटना घटेगी। मारी ने हॉल में कदम रखते ही छात्रों पर एक नजर डाली। बिना किसी भूमिका के उन्होंने अपना व्याख्यान शुरू कर दिया—ठीक वहीं से, जहां से पियरे

ने छोड़ा था। बहुत निराश होकर लौटना पड़ा उन लोगों को जो यह सोचकर आये थे कि पति के आसन पर बैठते ही दुःख से कातर मारी अपने को सम्भाल न पायेगी। मारी ने व्याख्यान दिया विद्युत की गठन, परमाणु के विश्लेषण और तेजस्क्रिय पदार्थों के बारे में। बहुत सी नयी-नयी बातें बताने के बाद वह जैसे शान्त और स्वाभाविक भाव से हॉल के भीतर आई थीं, वैसे ही धीरे-धीरे बाहर चली गयीं।

मारी अब बहुत व्यस्त रहती थीं। लड़कियों को पढ़ाना। प्रयोगशाला में काम करना। सारबान में छात्रों को पढ़ाना। अपने बगीचे और घर-गृहस्थी की देख-भाल। एक नहीं, हजारों काम। ऊपर से एक और धुन चौबीस घंटे उन पर सवार रहती।

कौन सी धुन ?

धुन यह कि पियरे की यादगार में एक बहुत बड़ी, बहुत अच्छी, प्रयोगशाला बनवायी जाय।

पति की मृत्यु के बाद, पुराना मकान छोड़, मारी ने शहर के बाहरी इलाके में छोटा-सा मकान लिया। दूर रहने से शहर जाने के लिए उन्हें तड़के ही गाड़ी

पकड़नी पड़ती थी। शाम को घर लौटते-लौटते अंधेरा हो जाता। मां की अनुपस्थिति में दोनों लड़कियां क्या करेंगी, इसका इन्तजाम मारी पहले ही कर जातीं। शनिवार-इतवार, या छुट्टी के दिन, या ऐसे ही किसी और दिन, मारी बेटियों के साथ साइकिल पर घूमने निकल जातीं। वह चाहती थीं कि उनकी बेटियां भी खूब स्वस्थ और साहसी बनें।

प्रयोगशाला में भी काम जोर-शोर से जारी था। इन्हीं दिनों एक अचम्भे की बात हुई। मारी और देवियर्न ने रेडियम को ठोस धातु के रूप में बदल दिया। किन्तु एक बार ऐसा हो गया तो दुबारा फिर न हो सका। बाद में वह या कोई और रेडियम को धातु का रूप न दे सका।

१९११ में मारी को फिर नोबल पुरस्कार मिला। इस बार रसायन-विज्ञान पर। क्या देश और क्या विदेश, हर जगह, हरेक की जबान पर मादाम क्यूरी का नाम था। इतने पर भी मारी वही पुरानी मान्या बनी रही; लजीली और भावुक लड़की। प्रचार से बचने के वह सदा उपाय करती रहती।

सुनो, एक दिलचस्प घटना सुनाऊं।

एक बार एक संवाददाता मारी के पास आया

और उनसे पूछा : "क्या आप बता सकती हैं कि मादाम क्यूरी कहां हैं ?"

"जी, अभी-अभी मैंने उन्हें उस ओर जाते देखा है।" एक ओर को इशारा करके मारी ने संवाददाता को चलता किया।

छुट्टी

मारी अब घड़ी भर भी चैन से न बैठ पातीं। दिन भर काम में व्यस्त रहतीं।

इसी समय उनकी मातृभूमि से उनकी पुकार हुई। पोलैण्ड के वारसा नगर में तेजस्क्रियता सम्बन्धी एक प्रयोगशाला बनायी जाने वाली थी। मारी से कहा गया कि इस प्रयोगशाला का भार उन्हीं को सम्भालना होगा। मारी ने सोचा : अगर फ्रान्स छोड़ कर चली जाती हूं तो पियरे की स्मृति में जिस प्रयोग-शाला को बनाने के अब तक सपने देखती रही हूं, वह कभी न बन पायेगी। इतने दिनों की साध मन में ही रह जायेगी।

पोलैण्ड से आया निमंत्रण उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

अब उनसे कहा गया कि फ्रान्स से ही वह उस प्रयोगशाला का संचालन करें। हां, उसके उद्घाटन के समय अवश्य पहुंच जायें।

सो, उद्घाटन के समय मारी वहां पहुंच गयीं। अपनी मातृ-भाषा में पहली बार उन्होंने वैज्ञानिक विषय पर भाषण दिया। देश के लोगों ने दोनों हाथ उठाकर उनका अभिनन्दन किया।

बहुत दिनों बाद छुट्टियां बिताने के लिए मारी बेटियों के साथ स्विटजरलैंड गयीं। अहा, कितना अच्छा लगता है झोला लटकाये हुए पहाड़ी रास्तों पर घूमना। लड़कियों को भी पहाड़ पर चढ़ना सिखाना था। इन्हीं दिनों सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टाइन भी स्विटजरलैण्ड में मौजूद थे। पहाड़ी रास्तों पर घूमते-घूमते आइन्स्टाइन मारी को सापेक्षता के अपने सुप्रसिद्ध सिद्धान्त के बारे में बताते रहते।

पियरे की मृत्यु के बाद उनकी यादगार में एक प्रयोगशाला बनवाने का सपना मारी बहुत दिनों से देख रही थीं।

१९१४ के जुलाई महीने में उनका सपना पूरा हुआ।

पेरिस की भूमि पर प्रयोगशाला का विशाल भवन गर्व से सिर उठाये खड़ा था। सामने रंग-बिरंगे फूलों का मनोहर बगीचा था; उसी में मारी के हाथों लगाया हुआ गुलाब का पौधा भी था।

इसी बीच छिड़ गया युद्ध। युद्ध के कारण—प्रयोगशाला का भवन तैयार हो जाने पर भी—प्रयोगशाला चार साल तक बन्द रही। मारी के साथ काम करने वालों में से दो-एक को छोड़, बाकी सभी युद्ध के मोर्चे पर चले गये।

एक्स-रे की मशीनें उन दिनों मिलती न थीं। बहुत कम अस्पतालों में एक्स-रे का इन्तजाम था। एक चलती-फिरती एक्स-रे गाड़ी तैयार करने के लिए मारी ने फ्रांस के महिला-संघ से रुपयों की मांग की। मारी के प्रयत्नों और महिला-संघ के दान से फ्रांस में पहली एक्स-रे गाड़ी तैयार हुई।

जर्मन सेना अब तक बढ़ते-बढ़ते पेरिस के निकट आ पहुंची थी। लगता था कि पेरिस अब गया, अब गया। फिर भी मारी पेरिस नहीं छोड़ना चाहती थीं। उन्होंने सोचा : अगर मैं स्वयं पियरे की प्रयोगशाला पर पहरा देती रही तो जर्मन लूट-पाट मचाने का साहस न करेंगे। हां, अगर उन्होंने यहां किसी को देखा नहीं, तो एक भी चीज न छोड़ेंगे।

मारी पेरिस में ही रहीं। उनके पास एक ग्राम बहुमूल्य रेडियम था। उसे हटाना आवश्यक था। कहीं वह जर्मनों के हाथ न पड़ जाय! मारी ने उसे बोर्दो

के बैंक में रखने का प्रबन्ध किया। वह स्वयं बोर्दो गयीं। गाड़ी में बड़ी भीड़भाड़, बड़ी धक्कामुक्की थी। कांच की जिस नली में रेडियम था, वह बहुत भारी थी। खाने-पीने की फिक्र नहीं, सोने की फिक्र नहीं। फिक्र थी मारी को तो बस एक चीज की : अपने रेडियम की। अन्त में रेडियम को सुरक्षित जगह रखकर मारी दूसरे दिन सुबह लौट आयीं। लौट कर आयीं तो देखती क्या हैं कि पेरिस सुनसान पड़ा है; एकदम उजाड़ मालूम हो रहा है। पता चला कि जर्मनों को रोक दिया गया है, और पेरिस अब खतरे से खाली है।

यह मारी के अथक परिश्रम का ही नतीजा था कि दो सौ अस्पतालों में एक्स-रे की मशीनें लग गयीं और एक्स-रे गाड़ियों की संख्या बीस तक पहुंच गयी। कुल मिलाकर दस लाख घायलों के इलाज का प्रबंध हो गया। मारी और उनकी पुत्री इरीन ने एक सौ पचास व्यक्तियों को रेडियोलॉजी की शिक्षा दी। फ्रान्स ही नहीं मारी ने अब बेल्जियम के अस्पतालों का भी दौरा किया।

मारी को जब भी फुर्सत मिलती, पुरानी प्रयोग-शाला के साज-सामान को बांधकर पियरे क्यूरी की

स्मृति में बने नये अस्पताल ले जातीं। वहां उसे खोलकर, झाड़-पोंछकर, चुन-चुनकर कमरे में सजातीं। इसी बीच बोर्दो जाकर वह रेडियम भी वापिस ले आयीं। हर हफ्ते उससे किरण निकालकर, ट्यूब में भरकर, इस्तेमाल के लिए अस्पताल को भेजतीं।

युद्ध समाप्त होने के बाद — १९१९ की ११ नवम्बर को — मारी ने सियेन नदी के एक द्वीप में घर लिया। एक बार फिर मारी जी-जान से विज्ञान की साधना में जुट गयीं। पियरे क्यूरी की प्रयोगशाला में भी पूरे जोर-शोर से काम शुरू हो गया।

इस प्रयोगशाला का काम मारी के ही कंधों पर था। संसार की पांच भाषाओं में रेडियम के बारे में जो कुछ लिखा गया था वह सब मारी की जबान पर था। मारी से शिक्षा पाना कम सौभाग्य की बात न थी। दूर-दूर के विद्यार्थी उनसे शिक्षा पाने के लिए आते। मारी सबेरे आठ बजे प्रयोगशाला में पहुंच जातीं। उनके छात्र भी तरह-तरह के प्रश्न लेकर उनके पास पहुंच जाते। कोई उनसे प्रश्न पूछ रहा है, तो कोई अपने नये काम दिखाने के लिए उन्हें खींचे लिये जा रहा है। छात्रों से पीछा छुड़ाना और प्रयोगशाला में अपने काम पर पहुंचना मारी के लिए कठिन हो जाता।

दोपहर में केवल एक बार मारी घर लौटतीं। घर पर भोजन की मेज पर बैठे-बैठे इरीन से पदार्थ-विज्ञान की चर्चा होती रहती। भोजन समाप्त होते ही मारी घर से निकल पड़तीं। कभी फूल खरीदने चल देतीं, कभी अपनी बेटी की बेटी यानी पोती से मिलने। इसके बाद फिर प्रयोगशाला पहुंच जातीं। कभी-कभी तो प्रयोगशाला में रात के दो बज जाते।

रात के भोजन के बाद मारी घड़ी-आध-घड़ी कोई कविता-पुस्तक या उपन्यास पढ़तीं। फिर, मेज पर किताबें सजाकर, तन्मय होकर, रात को दो बजे तक वैज्ञानिक प्रश्नों के हल निकालती रहतीं।

इतना काम, इतनी मेहनत। जरा सोचो, उनकी आंखों की क्या दशा हुई होगी। एक बार तो मारी की आंखें मानो बेकार ही हो गयीं। चार बार ऑपरेशन हुआ तब कहीं उनकी आंखें बचीं। तो भी, आंखों की ज्योति पूरी तरह नहीं लौटी।

एक बार एक अमरीकी महिला मादाम क्यूरी से मिलने आयी। यह घटना सन १९२० की है। बात-बात में महिला ने पूछा कि संसार की वह कौन-सी चीज है जिसे पाकर मादाम क्यूरी निहाल हो जायेंगी। मारी ने उत्तर दिया **अन्वेषण-कार्य के लिए हमें एक**

ग्राम रेडियम की जरूरत है: क्या करें, खरीदने के लिए पैसे नहीं हैं।

एक ग्राम रेडियम मारी को भेंट रूप में देने के लिए इस महिला ने अपने देश लौटकर देशवासियों से चालीस हजार रुपये इकट्ठे किये। लोगों ने मांग की कि यह भेंट मारी अपने ही हाथों से ग्रहण करें। इतने लोगों की बात मारी भला कैसे अनसुनी कर सकती थीं।

बाहर निकलकर ही मारी को मालूम हुआ कि संसार के लोग उन्हें कितना प्यार करते हैं। इतने दिनों तक उन्होंने अपने को सभा-सम्मेलनों और उत्सव-समारोहों से दूर रखा था। किन्तु अब उनकी समझ में आया कि केवल उनका नाम, उनकी उपस्थिति, ही बहुतों को अच्छे कामों की प्रेरणा दे सकती है। अब तो उन्होंने दूसरे देशों के सभा-सम्मेलनों और उत्सव-समारोहों में जाना आरम्भ किया। वह दक्षिण अमरीका गयीं, स्पेन गयीं। इंगलैंड और चेकोस्लोवाकिया भी घूम आयीं। दुनिया में किसी चीज से उन्हें सबसे ज्यादा घृणा थी तो युद्ध से। अतः जब 'लीग आफ नेशन्स' ने विभिन्न राष्ट्रों के बीच भाई-चारा कायम करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय कमिटी

बनायी तो मारी ने, एक सदस्या की हैसियत से, उसके कार्यों में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया। उन्होंने इस बात की कोशिश की कि संसार के सभी देशों में एक ही प्रकार की वैज्ञानिक शब्दावली काम में लायी जाय और वैज्ञानिक पुस्तकों और आविष्कारों की पूरी तालिका तैयार की जाय। मारी चाहती थीं कि कोई भी प्रतिभावान वैज्ञानिक — वह किसी भी देश का क्यों न हो — पैसे के अभाव में अपना काम न रोके। वह चाहती थी कि इसके लिए एक अच्छी योजना बनायी जाय। उनके स्वप्नों का संसार एक ऐसा संसार था जहां स्वतंत्रता और शान्ति का राज्य हो, जहां विज्ञान पर कोई अंकुश न हो।

अब मारी ने बीड़ा उठाया कि वारसा में एक रेडियम प्रतिष्ठान खड़ा करेंगी। उन दिनों मारी की बहन ब्रोन्या पोलैण्ड में ही थीं। उन्होंने देशवासियों से सहायता मांगी। देश भर में जगह-जगह दीवारों पर बड़े-बड़े पोस्टर लगाये गये। मारी की तस्वीर के साथ एक डाक टिकट भी निकला। पोस्टकार्ड में लिखा रहता था : 'मारी स्क्लोडोव्स्का प्रतिष्ठान के लिए एक ईंट आप भी खरीदिये।' इसके साथ ही मारी का छोटा-सा सन्देश भी था : 'वारसा में एक रेडियम प्रतिष्ठान बने — यहा मेरी कामना है।'

सन १९२५।

प्रतिष्ठान की नींव रखने के लिए मारी पोलैण्ड आयीं। थोड़े दिनों में ही प्रतिष्ठान बनकर तैयार हो गया। लेकिन…

लेकिन क्या ?

लेकिन रेडियम कहां से आये ?

एक बार फिर अमरीका के साधारण जनों ने मादाम क्यूरी की पुकार सुनी। मारी को रेडियम लाने के लिए फिर एक बार अमरीका जाना पड़ा। अमरीकी जनता का यह उपहार मारी ने स्वयं अपने हाथों वारसा पहुंचाया।

कैसी अद्भुत शक्ति वाली स्त्री थीं मारी ? मेहनत करते-करते उनकी उंगलियां सख्त पड़ गयी थीं। अब तो वे जवाब भी देने लगीं। आंखों की ज्योति भी बहुत कम हो गयी। किन्तु अब भी मारी यह न मानती थीं कि उनके कर्तव्य पूरे हो गये हैं। एक पुस्तक भी तो लिखनी थी उन्हें। पियरे का और उनका एक सपना था। सपना यह कि एक प्रयोगशाला बने; रेडियम की प्रयोगशाला। यह सपना भी पूरा हुआ। पेरिस में ही क्यों, वारसा में भी रेडियम की प्रयोगशाला खड़ी हो गयी। सो मान्या की खुर्दुरी मेहनती उंगलियों ने अब कलम संभाली।

कलम चलती रही, चलती रही। मारी ने लिखा। रेडियम का इतिहास लिखा। तिल-तिल ज्ञान की जो सम्पदा उन्होंने जमा की थी, जीवन के अन्तिम क्षण तक वे उसे दान करती रहीं। उन्होंने लिखा, ि रहीं। उनकी पुस्तक का नाम पड़ा—तेजस्क्रियता।

किताब लिख गयी। हाथ ने और आगे हिलने से इन्कार कर दिया। आंखें भी काम न देतीं। बार-बार आंखों के सामने अंधेरा छा जाता।

डाक्टरों ने जांच की। उन्होंने कहा: जीवन की सारी शक्ति लगाकर जिस रेडियम को इन्होंने प्रकृति के हाथों से छीना और समाज के हवाले किया है, वही इन्हें मृत्यु की ओर लिये जा रहा है; हां, सचमुच मृत्यु की ओर लिये जा रहा है। मारी के रक्त कणों को रेडियम धीरे-धीरे नष्ट कर रहा था। इस तेजस्क्रिय पदार्थ को बार-बार छूने, उठाने और रखने से ही मारी के हाड़-मांस में, खून में, विष फैल गया था।

सन १९३४।

४ जुलाई का दिन।

आसमान नीला है। सूर्य अपनी लम्बी यात्रा पर निकलने की तैयारी कर रहा है।

सूर्य की प्रथम किरण ने मारी के कमरे के बिछौने का स्पर्श किया। उसने मारी का स्पर्श किया। ऊंचा माथा। माथे के नीचे बन्द आंखें। आंखों के नीचे घनी छाया। मारी मौन।

मारी का शरीर स्थिर है। मारी ने अटूट मौन धारण कर लिया है—हृदय-स्पदन रुक गया है।

दूर...

रेडियम का प्रयोगशाला में कोई रो पड़ा: "हाय, हम सब हार गये!"

किन्तु पास ही, अन्धेरे कमरे में, रेडियम के चमकते कण अपलक सब कुछ देख रहे थे। ऐसा मालूम होता था मानो वे कह रहे हैं: "मारी है, मारी जीवित है!"

मारी मरी नही! मारी अमर है!